प्रवचन

परमहंस श्री हंसानंद जी सरस्वती दण्डी स्वामी जी

विषय तालिका

CD # 60 * JUL 2013 *

SN	Title	Min	Coding		Contents
1	01- Jul -13	38	⊕	ओंकार का स्वरूप	**सृष्टि के आदि में एक मात्र एकाकी भगवान ही थे और दूसरा कोई नहीं था।** सबसे पहले भगवान से ओंकार प्रकट हुआ। प्रकट होने से पहले ओंकार परब्रह्म ही था इसलिये इसका नाम **'परा'** वाणी था फिर जब बोलने की इच्छा हुई तो ये मन में आया अब इसका नाम **'पश्यन्ति'** पड़ गया, जब ये कंठ में आया तो इसका नाम **'मध्यमा'** और जब मुख में आया तो **'बैखरी'** पड़ गया, बैखरी यानि बहुत से स्वर-व्यंजन के रूप में बिखर गया अतः सभी स्वर-व्यंजन ओंकार का ही रूप हैं ओंकार का स्वर-व्यंजन में विस्तार **अकार** वासुदेव का रूप है जो सभी स्वर-व्यंजन में समाया हुआ है। इस प्रकार ओंकार सभी स्वर-व्यंजन के रूप में बिखर गया। इन्हीं स्वर-व्यंजनों से संसार के सारे **'नाम-पद'** एवं **'क्रिया-पद'** बनते हैं जिनसे सारा व्यवहार होता है। नाम-पद **सुगन्त** तथा क्रिया-पद **तिगन्त** से बनते हैं। इस प्रकार (सुगन्त) नाम-पद और तिगन्त (क्रिया-पद) को मिला देने पर व्यवहार चलता है। **रूप** भी इसी ओंकार ने धारण कर लिये। नाम लेने से उनके रूप सामने आ जाते हैं, इस प्रकार संसार के सारे नाम-रूप ओंकार ने ही धारण कर लिये। फिर इस ओंकार ने जा०-स्व०-सु० का रूप धारण कर लिया। संक्षेप में **ओंकार = अ-उ-म** को मिला देने पर एक अक्षर **ओम्** बन जायेगा। ये ब्रह्म का सबसे छोटा एक अक्षर का नाम है। जो जीव इस **'ओम्'** नाम को लेता हुआ व इसका ध्यान करते हुए इस जगत से प्रयाण करता है वह परमगति को प्राप्त हो जाता है अर्थात् वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। **माया** में **'सत्-रज-तम्'** ३ गुण होते हैं इसलिये **'अ-उ-म'** से इनों गुण आ गये। इस प्रकार ओंकार के **अ-उ-म** से क्रमशः ये सब बन गये :- 'सत्-रज-तम्' ३ गुण = 'विष्णु-ब्रह्मा-महेष' ३ देव = 'स्थूल-सूक्ष्म-कारण' ३ देह = जा०-स्व०-सु० इनों अवस्थायें, इतनी ये माया है, प्रकृति है, दृश्य है - इसके आगे परब्रह्म परमात्मा है जो माया, माया के गुण व इन्द्रियों के परे है। ओंकार भगवान का सबसे छोटा नाम है। ओंकार स्वर-व्यंजन रूप है व इसे तो ज्ञान है नहीं तो ये भगवान को किस प्रकार बताता है? ओंकार ब्रह्म को **'तद्-पद'** से बताता है। **तद् = वह** और **इदं = यह** । ओंकार कहता है कि इदं = 'इनों गुण, इनों अवस्थायें, इनों देह व इनों काल' तो मेरा रूप है यानि प्रकृति मेरा स्वरूप है तथा वह जो मुझको जानता है, वह जो ज्ञान रूप है, वह जो सत्-चित्-आनंद रूप है = तद् ब्रह्म यानि जिसे मैं नहीं जानता पर जो मुझे जानता है वह ब्रह्म है। हे जीव! वही तेरा भी रूप है अतः तू स्वयं को ब्रह्म जान। हमारा आत्मा ब्रह्म है और ब्रह्म हमारी आत्मा है। इस प्रकार ओंकार तद्-पद से ब्रह्म को बताता है - **तत्त्वमसि,** वही तेरा भी स्वरूप है //
2	02- Jul -13	28	⊕	ऋषि आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश	**छा०उ० :: छटा अध्याय ::** विद्याध्ययन समाप्त कर घर लौटने पर विद्या के अभिमानी **पुत्र श्वेतकेतु से आरुणि ने पूछा कि :-** एक ऐसी विद्या है जिस एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान हो जाता है, जो अविज्ञात है वह भी ज्ञात हो जाता है, जो कभी नहीं सुना वह सुना हुआ और जो कभी नहीं देखा वह देखा हुआ हो जाता है - **क्या तुमने वह विद्या पढ़ी है?** इस पर श्वेतकेतु ने कहा कि पिताजी वह विद्या तो मैंने नहीं पढ़ी, अब उसका अभिमान टूट गया। उसने पिता के चरणों में प्रणाम किया और वह विद्या प्रदान करने की प्रार्थना की। **आरुणि का श्वेतकेतु को उपदेश ::-** हे श्वेतकेतु! जैसे **एक माटी के पिण्ड जान लेने से माटी से बने संसार के जितने घट-मठ हैं सब जान लिये जाते हैं।** माटी से घट-मठ बनते हैं, माटी में रहते हैं और टूट-फूट जाने पर फिर माटी में ही मिल जाते हैं इसलिये वे माटी से अभिन्न हैं व माटी रूप ही हैं // **ऐसे ही एक परब्रह्म को जान लेने से सब जान लिया जाता है कि से संसार परब्रह्म का रूप ही है, परब्रह्म से अलग नहीं है। माटी के समान परब्रह्म है और घट-मठ के समान सारा संसार है अतः जैसे माटी से भिन्न घट-मठ नहीं होते वैसे ही परब्रह्म से भिन्न ये संसार नहीं है** // एक सोने से अनेक आभूषण बनते हैं वो आभूषण सोने से भिन्न नहीं हैं। यद्यपि सबके नाम-रूप अलग-अलग होते हैं। मुकुट, कंठा, कॉंछी, अँगूठी आदि नाम और काम जुदा होने पर भी वे सोने से अभिन्न हैं, क्या सोना निकाल लेने पर कोई आभूषण बचेगा? माने सोना ही अनेक रूप में है, सोने से जुदा आभूषण नहीं है // इसी प्रकार हे सौम्य! एक परब्रह्म परमात्मा से ये सारा संसार बना है - स्त्री-पुरुष, मनुष्य, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र, वृक्ष-पर्वत सबके नाम, रूप और काम जुदा-जुदा हैं परन्तु ये परम् ब्रह्म परमात्मा से जुदा नहीं हो सकते क्योंकि कारण परमात्मा हैं। कारण के ज्ञान से कार्य जाना जाता है क्योंकि कार्य अपने कारण से अभिन्न होता है। कारण एक है और कार्य अनेक हैं तो भी कारण से जुदा नहीं हैं - इसी प्रकार से ब्रह्म जगत का कारण है और जगत ब्रह्म का कार्य हैं इसलिये ब्रह्म से जुदा नहीं है // लोहे से भाला, बरछी, तीर, तलवार आदि सब अस्त्र-शस्त्र बनते हैं और रेल मोटर व जहाज़ बनते हैं, सबके नाम-रूप और काम भी अलग-अलग हैं पर लोहे से जुदा नहीं हैं। लोहा एक है और अस्त्र-शस्त्र अनेक हैं, लोहा निकाल लो तो कोई भी नहीं बचेगा। इसी प्रकार परम् ब्रह्म परमात्मा एक है, उसी से ये संसार उत्पन्न हुआ है इसलिये कोई स्त्री-पुरुष, मनुष्य, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र, वृक्ष-पर्वत परमात्मा से जुदा नहीं है ये सब भगवान का ही स्वरूप है // जैसे जल से फेन, बुदबुदे, तरंगें उत्पन्न होते हैं। जल एक है और तरंगें अनेक हैं तो भी जल से जुदा नहीं हैं। तरंगें जल से उत्पन्न होती हैं, जल में रहती व चलती-फिरती हैं और जल में ही लीन हो जाती हैं। ये नाम-रूप तरंग-बुलबुले वाणी का विकार मात्र हैं। विचार करने पर सब तरंगें जल ही हैं, पकड़ने पर जल ही हाथ में आयेगा। ज्ञानी लोग सब तरंगों में जल का ही दर्शन करते हैं। ऐसे ही स्त्री-पुरुष, मनुष्य, पशु-पक्षी तरंगों के समान और भगवान आनंद सिन्धु हैं, उन्हीं की ये तरंगें हैं। जगत भगवान से उत्पन्न होता है, भगवान में रहता है और पुनः भगवान में लीन हो जाता है। स्त्री-पुरुष, मनुष्य, पशु-पक्षी, देवी-देवता आदि के नाम, रूप व काम अलग-अलग हैं पर वह ब्रह्म से जुदा नहीं हैं // **वेदान्त का सिद्धान्त तो यही है कि :-** ईश्वर-जीव-जगत सब ब्रह्म का ही रूप है क्योंकि ब्रह्म ही जगत का कारण है और जगत कार्य, इसलिये सब में सच्चिदानंद ब्रह्म का ही दर्शन करना चाहिये। एक अद्वितीय भगवान ही सब में समाया हुआ है। विद्वान सब में भगवत् / ब्रह्म दृष्टि करते हैं इसलिये उनके लियें किसी से शत्रु या मित्र भाव नहीं होता अथवा किसी से घृणा नहीं होती क्योंकि सबमें ब्रह्म का दर्शन करते हैं। **वे नित्य मुक्त हैं** //
3	03- Jul -13	33	⊕	⊕	**जगत के माता-पिता सीता-राम हैं,** इन्हीं से सारी सृष्टि होती है क्योंकि अकेले सृष्टि नहीं हो सकती न माता से और न पिता से । ब्रह्मचारिणी स्त्री एवं ब्रह्मचारी पुरुष के समान केवल सीता अथवा केवल राम भी सृष्टि नहीं कर सकते। इन दोनों में भी सृष्टि करने में मुख्य भूमिका स्त्री की ही होती है। पुरुष तो केवल निमित्त मात्र होता है, वह केवल बीजारोपण करता है। माता गर्भ धारण करती है, प्रसव पीड़ा सहती है, स्तन पान कराती है तथा सब प्रकार से पुत्र का पालन-पोषण करती है ०० सीता जगत की माता व राम पिता हैं। राम केवल निमित्त मात्र हैं, जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार सीताजी करती हैं। **रामायण में तुलसीदासजी ने सीताजी की वन्दना इस प्रकार की है :-** संसार की सृष्टि-पालन-संहार करने वाली, क्लेष हरने वाली, सब प्रकार से कल्याण करने वाली व राम को अत्यन्त प्रिय सीताजी को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। पुत्र पर माता का बड़ा उपकार होता है। माता ही पुत्र की प्रथम गुरु होती है इसलिये माता का स्थान पिता से १० गुना अधिक होता है ०० **मदालसा** नाम की एक माता हुई है, विवाह से पहले ही उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो भी मेरे गर्भ में आयेगा उसे मैं अवश्य ही मुक्त कराऊँगी जिससे उसे दूसरे गर्भ का कष्ट न सहन करना पड़े। पुत्र जन्म होने व उसके रोने पर उसने कहा - हे पुत्र! हू-हू करके तू क्यों रो रहा है? तू तो शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप है, माया से भी परे है। हे पुत्र! ये संसार स्वप्न है, संसार में अहंता-ममता करना मोह है अतः अपने सच्चिदानंद स्वरूप में जागो व मोह निद्रा को त्यागो। सारे संसार के लोग मोह निद्रा में सोये हुए हैं व संत लोग अपने स्वरूप में जागे हुए हैं, वे जा-जाकर मोह निद्रा में सोये हुए लोगों को जगाते हैं ०० भगवान शंकर भी पार्वतीजी से यही कहते हैं कि हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव

						सुनाता हूँ - **हरि का भजन ही सत्य है, वही सत्-चित्-आनंद है,** ये जगत तो स्वप्नवत् झूठा है ०० भगवान राम भी लक्ष्मण से कहते हैं कि हे लक्ष्मण! 'ये शरीर मैं हूँ और इस शरीर के सम्बन्धी मेरे हैं' ये **'मैं और मेरा'** ही माया है। जहाँ तक इ०म०बु० जायें वह सब माया ही जानो अतः ये जगत माया रूप ही है ०० सीताजी महामाया शक्ति हैं और राम जगत-पिता सच्चिदानंद ब्रह्म हैं। जगत में ईश्वर और जीव के शरीर ही आते हैं ईश्वर-जीव नहीं। सीताजी शरीरों की ही उत्पत्ति करती हैं। जीव-ईश्वर का तो जन्म ही नहीं होता। सीताजी ईश्वर-जीव की माता नहीं हैं - 'श्रुति शेष पालक राम तुम जगदीश.....रुख पाये कृपानिधान की'। जीव और ईश्वर का एक स्वरूप है। **'जीव'** ईश्वर का अंश है इसीलिये वह भी **ज्ञान स्वरूप, निर्मल, और अविनाशी** है। जीव का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती अतः हमारा तुम्हारा स्वरूप जीवात्मा है। जीव-ईश्वर के शरीर ही नाशवान हैं जीव-ईश्वर नहीं। **जीव को राम का स्वरूप तथा शरीर को सीता का स्वरूप जानो। सारा संसार सीता-राम का ही स्वरूप है** ००	
4	04- Jul -13	39	⊕	⊕	⊕	**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद भगवान ही थे दूसरा कोई नहीं था।** भगवान कृष्ण कहते हैं अर्जुन ! - *मयि अखण्ड सुखाम् बोधउ बहुधा विश्व बीचिया, उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया मारुत विभ्रमात्* - मुझ अखण्ड सुखरूप सिन्धु में बहुत से नाम-रूप वाला अनंत कोटि ब्रह्माण्डक विश्व एवं शरीर-पिण्ड रूपी लहरें उत्पन्न होती हैं और मुझ में ही विलीन हो जाती हैं फिर मैं शान्त महासागर आनंद सिन्धु अकेला ही रह जाता हूँ जैसे समुद्र में उठती हैं, चलती-फिरती हैं व समुद्र में ही लीन हो जाती हैं फिर एक समुद्र ही रह जाता है । इसी प्रकार श्रुति कहती है :- *आनंदाद्धयो खल्विमानि भूतानि जायंते, आनंदेन जातानि जीवन्ति, आनंदम् प्रयन्ति, अभिशम् विशन्ति, तद् ब्रह्म - ''तत्त्वमसि'' ।।* माया रूपी पवन के निमित्त से आनंद सिन्धु से ही निःसन्देह (क्योंकि ये ईश्वर की वाणी है) ये पिण्डरूपी लहरें (जल में लहरों के समान) उत्पन्न होती हैं, चलती-फिरती हैं व आनंद सिन्धु में ही प्रविष्ट हो जाती हैं फिर आनंद सिन्धु शान्त महासागर के समान ही रह जाता है। आनंद सिन्धु एक है लहरें अनेक हैं। जल का ही लहरों के रूप में आकार बन जाता है। **जल रस** है और **लहरें रास** हैं, **एक को रस व अनेक को रास कहते हैं।** वेद कहता है रस नाम आनंद सिन्धु का है, सो एक है, **स = वह जो ब्रह्म है वह आनंद सिन्धु है।** जल शान्त रहता है और लहरें नाचती हुई चलती हैं व आवाज़ भी करती हैं मानो गीत गा रही हैं। इस प्रकार से आनंद सिन्धु में लहरें उठती हैं ये रास है क्योंकि रास एक में नहीं अनेक में बनता है और जब रास समाप्त हो जाता है तो एक रस रह जाता है। रस सत्य है रास तो खेल है, थोड़ी देर देख लो फिर सब लहरें जल में मिल जाती हैं। लहरें रास हैं - झूठी हैं, यद्यपि आँखों से चलती हुई अवश्य दिखाई पड़ती हैं परन्तु उन लहरों को पकड़ने पर जल ही हाथ में आयेगा। **रस सच्चिदानंद ब्रह्म है और रास ये पिण्ड/ब्रह्माण्ड रूपी लहरें हैं।** इस प्रकार वेद कहता है कि सम्पूर्ण लहरों में ज्ञानीजन जल का ही दर्शन करते हैं क्योंकि लहरों में जल ही भरा होता है, जल से अलग लहरों का अस्तित्व नहीं है इसलिये ज्ञानी लोग स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वतादि पिण्ड रूपी लहरों में सच्चिदानंद ब्रह्म को ही देखते हैं, सत्य का दर्शन करते हैं (जल सत्य है क्योंकि सदा रहता है और लहरें असत्य हैं वे सदा नहीं रहतीं) - **वे नित्य मुक्त हैं।** ये शरीर हमारी लहरें हैं इसमें ज्ञानी लोग अहंभाव नहीं करते। इन शरीर रूपी लहरों का आनंद-सिन्धु कारण है और लहरें कार्य हैं, ज्ञानियों की **'कारण दृष्टि'** होती है - मैं देह रूपी लहर नहीं हूँ किन्तु आत्मा रूपी आनंद-सिन्धु हूँ - ये ही ज्ञान का लक्षण है। मैं देह नहीं हूँ, मैं देह में रहने वाला व देह को देखने वाला आत्मा हूँ - इसको ज्ञान कहते हैं। जैसे अज्ञानी की दृष्टि **'मैं देह हूँ'** रहती है, **अज्ञानी लहर में निश्चय करता है और ज्ञानी आत्मा में निश्चय करता है,** ये शरीर तो मेरी आत्मा की लहर है, ये मुझसे ही उठी है व कुछ समय में मुझमें ही लय हो जायेगी पर **मैं सदा रहूँगा क्योंकि आत्मा का तो जन्म-मरण होता नहीं,** शरीर ही जन्मते-मरते हैं - *'न जायते म्रियते वा कदाचित् ... न हन्यते हन्यमाने शरीरे'*- भगवान कहते हैं कि जीवात्मा का जन्म नहीं होता, आत्मा **'अज'** है इसी लिये **नित्य, शाश्वत** व **पुरातन** है, शरीर के नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। मुझ आत्मा रूपी आनंद-सिन्धु से शरीर रूपी लहरें उत्पन्न होती हैं और लय हो जाती हैं। आत्मा नित्य सर्वव्यापक यानि द्रष्टा रूप से सब शरीरों में समाया हुआ सबकी आँखों से देख रहा है और वह **एक** है, **अचल** है। अर्जुन! अब **आत्मा का स्वरूप** सुनो :- *'आत्मा साक्षी विभु पूर्णः एको मुक्तः चिदक्रिया, असंगो निःस्पृहः शान्तः भ्रमात् संसारवान् इव'* भ्रम से ऐसा लगता है कि मैं शरीर हूँ अतः अपने को सच्चिदानंद जानो और शरीर को असत्-जड़-दुःखरूप जानो जो लहरों के समान सच्चि० की माया से बनता-बिगड़ता रहता है ।।	
5	05- Jul -13	38	⊕	हम पुरुष–द्रष्टा हैं तथा शरीर छाया–दृश्य है		**सृष्टि के आदि में एक अकेले भगवान ही थे और कोई नहीं था** फिर उस ब्रह्म से पुरुष में छाया के समान, रज्जु में सर्प के समान माया का प्रादुर्भाव हुआ। छाया कोई चीज़ नहीं होती पर प्रकट हो जाती है। अज्ञानी लोग छाया को ही सत्य मान लेते हैं। छाया पुरुष से उत्पन्न होती है, पुरुष के आश्रित रहती है और पुरुष में ही लीन हो जाती है। जो छाया को सत्य मान लेते हैं वो बालक है। छाया दीखती तो है पर पकड़ में नहीं आती। बालक भोला होता है क्योंकि उसे सत्-असत् का ज्ञान नहीं होता, इसी प्रकार से ये जीव 'अज्ञानी बालक' है - दृष्टान्त - १. बालरूप भ० कृष्ण का माखन चुरा कर भागते हुए दर्पण में अपने ही प्रतिबिम्ब को ग्वालिन का पहरेदार समझने की लीला तथा २. जल से भरे चाँदी के थाल में चन्दमा के प्रतिबिम्ब को देखकर उसे चन्द्र खिलौना जानकर पकड़ने की लीला ३. बालरूप भ० राम की दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर नाचने की लीला ।। ये शरीर छाया है पर जीव इसे सत्य मानकर इसमें अहंता-ममता कर लेता है और इसे पकड़ना चाहता है, सत्य को पहचानता ही नहीं - दृष्टान्त - ।। सियार और शेर की कथा ।। इसी प्रकार ये जीव रूपी शेर बलवान होते हुए भी इस मन-बुद्धि के कहने में आकर इस शरीर रूपी छाया को अपना स्वरूप मान बैठा है जो रहने वाला नहीं है। संसार भी अंधा कुँआ है, एक दिन ऐसा आता है कि वह इसी में गिर जाता है इस छाया के पीछे, अपने स्वरूप जीवात्मा को नहीं जानता है। हमारा तुम्हारा स्वरूप जीवात्मा है छाया नहीं है। छाया सदा नहीं रहती वह उत्पत्ति-नाशवान है। पुरुष सदा रहता है, **हमारा स्वरूप पुरुष है। पूर्णत्वात् पुरुषः - सत्य, ज्ञान, आनंद से जो पूर्ण हो उसे पुरुष कहते हैं।** हम पुरुष हैं - ये शरीर छाया है, ये दृश्य हैं - हम द्रष्टा हैं। शरीर नाशवान हैं व हम अविनाशी हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं - *'न जायते म्रियते ... हन्यमाने शरीरे'* - जीवात्मा का जन्म-मरण नहीं होता। हम तुम जीवात्मा हैं शरीर रूपी छाया नहीं हैं। सभी शास्त्र ये कहते हैं कि इस शरीर को अपना स्वरूप मत मानो, द्रष्टा-साक्षी आत्मा को अपना स्वरूप मानो ।।	
6	06- Jul -13	37	⊕			**सामवेद :: छा०उ० :: ७तवाँ अध्याय :: नारद-सनतकुमार सम्वाद ::** हे भगवन् ! मुझको अध्ययन कराओ। तब सनतकुमार बोले - तुम जितना जानते हो वह पहले हमें बताओ उसके आगे हम बतायेंगे, फिर नारदजी बोले कि मैंने इतना अध्ययन किया है :- १. चारों वेद २. इतिहास (महाभारत) एवं अष्टादश पुराण - एक लाख श्लोक वाली महाभारत में कथाओं के माध्यम से भगवान का ज्ञान कराया गया है व इन दोनों में वेदों का ही विस्तार है। वेद में भी एक लाख मंत्र हैं, ८० हज़ार कर्मकाण्ड में, १६ हज़ार भक्तिकाण्ड में और केवल ४ हज़ार मंत्र ज्ञानकाण्ड में हैं जिसमें भगवान के स्वरूप का निरूपण है। चित्तशुद्धि के लिये कर्मकाण्ड, चित्त एकाग्रता के लिये भक्तिकाण्ड और मोक्ष अर्थात् जन्म-मरण से मुक्ति के लिये ज्ञानकाण्ड है ३. व्याकरण - वेदों के छः अंग है - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द व ज्योतिष, इनमें व्याकरण को **'मुख रूप'** बताया है क्योंकि वेद देववाणी-संस्कृत में लिपिबद्ध हैं अतः इसके द्वारा ही वेदों में प्रवेश सम्भव है ४. पितृं-पितरों की विद्या ५. राशिं-गणित शास्त्र ६. दैवं-देवताओं का उत्पात ज्ञान ७. निधिं-भूगर्भ विज्ञान ८. वाको-वाक्यं-तर्क शास्त्र ९. एकायनम्-नीति शास्त्र	
7	07- Jul -13	27	⊕	⊕		**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था** फिर उनसे रज्जु में सर्प के समान, पुरुष में छाया के समान माया का प्रादुर्भाव हुआ। पुरुष में छाया अपने आप ही प्रकट होती है, पुरुष के आश्रित रहती है और फिर पुरुष में ही लीन भी हो जाती है। छाया को ज्ञान नहीं है, पुरुष ही उसे देखता है। ऐसे ही माया भी अपने आप ही प्रकट हो गयी। भगवान सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हैं इसलिये उन्हें पुरुष कहते हैं, भगवान कहते हैं। **माया के अनेक नाम हैं** जैसे - अव्यक्त, शक्ति, अनादि, अविद्या - अज्ञान-अंधकार रूप, त्रिगुणात्मिका - सत्-रज-तम् ३ गुण वाली, परा - परमात्मा की शक्ति, माया - अद्भुत् काम करने वाली, क्षण भर में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड की रचना कर देती है (जो चीज़ बिना सामग्री के उत्पन्न होती है वह झूठी होती है) - इन्द्रजालवत्, इसलिये ये जगत मिथ्या है क्योंकि बिना सामग्री से बना ये माया का कार्य है। जैसे जागने पर स्वप्न नहीं रहता इसी प्रकार स्वप्न में जागृत का जगत नहीं रहता - स्वप्न में जागृत का अन्न-जल नहीं रहता। स्वप्न में जागृत नहीं रहता पर हम रहते हैं, हम सत्य हैं हम सदा रहते हैं।? क्योंकि जागृत में स्व० नहीं है हम हैं, स्वप्न में जा० नहीं है पर हम हैं और सुषुप्ति में हम जा०-स्व० दोनों के अभाव को देखते हैं और सु० के अज्ञान-अंधकार को देखते हैं अतः जा०-स्व०-सु० तीनों माया हैं। २४ घंटे में तीनों बदल जाती हैं। ये माया छाया की तरह आती-जाती रहती है इसलिये झूठी है, हम सदा रहते हैं	

						- हम पुरुष हैं, सत्य हैं। ब्रह्म से माया उत्पन्न हुई है, माया रचित जगत भी झूठा है। माया अन्त में भगवान में ही समा जाती है जैसे छाया पुरुष में समा जाती है और सत्य पुरुष रह जाता है इसलिये स्वयं को सच्चिदानंद ब्रह्म रूप जानो और दृश्य जगत को माया रूप जानो, यही वेद कहता है। हमारा अपका स्वरूप नित्य मुक्त है उसका जन्म-मरण हुआ ही नहीं है। जन्म-मरण बन्धन है, हम नित्य मुक्त हैं कर्तव्य से नहीं वरन स्वतः ही ।।	
8	08- Jul -13	35	⊕	⊕		**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था** फिर उनसे रज्जु में सर्प के समान, पुरुष में छाया के समान माया का प्रादुर्भाव हुआ। माया के अव्यक्त आदि अनेक नाम हैं - परमात्मा की इस शक्ति को अनादि, त्रिगुणात्मिका, परा भी कहते हैं, ये अद्भुत् कार्य करती है, असम्भव को सम्भव बना देने में समर्थ है इसलिये इसे माया भी कहते हैं जो क्षण मात्र में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड की रचना कर देती है। इस प्रकार ब्रह्म से अव्यक्त तत्त्व उत्पन्न हुआ :: ब्रह्म→अव्यक्त →महत्तत्व/समष्टि बुद्धि→अहंतत्त्व/समष्टि मन/अहंकार→पंचतन्मात्रायें (शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध)→पंचमहाभूत (आकाश,वायु, अग्नि,जल,पृथ्वी)→अखिलं जगत ।। पाताल, भूतल और स्वर्ग में सर्वत्र पंचमहाभूतों से ही सृष्टि है, छटा कुछ भी नहीं है। जो बनता है उसे बिगड़ना भी पड़ता है व जिससे बनता है उसी में लय भी होता है इसलिये हमारे शरीर पंचभूतों से बने होने के कारण पंचभूतों में ही लय हो जायेंगे। विपरीत क्रम से पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में व आकाश अपने कारण शब्द में मिल जायेगा यानि पंचभूत अपने उद्गम पंचतन्मात्राओं (शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध) में मिल जायेंगे। पाँचों तन्मात्रायें अहंतत्त्व में→अहं तत्त्व महत्तत्त्व में→महत्तत्त्व अव्यक्त तत्त्व या महामाया में और माया ब्रह्म में मिल जायेंगी क्योंकि अव्यक्त/माया की उत्पत्ति ब्रह्म से भयी है फिर अन्त में एक अद्वितीय ब्रह्म ही रह जायेगा। आदि में ब्रह्म था, मध्य में जगत हुआ और अन्त में भी एक ब्रह्म ही रह गया। वास्तव में जगत की उत्पत्ति ब्रह्म को समझाने की एक प्रक्रिया है, ये जगत सत्य नहीं है क्योंकि छाया तो झूठी ही होती है। ये माया भी छाया रूप ही है अतः झूठी है। ब्रह्म को पुरुष बताया है क्योंकि वह 'सत्य-ज्ञान-आनंद' से पूर्ण है। हमारा आत्मा भी 'सत्-चित्-आनंद' स्वरूप है सब शरीरों के भीतर जीवात्मा है जो देखता है। जीवात्मा शरीर नहीं है। प्रत्येक नाम-रूप में देखने वाला अनाम-अरूप, निर्गुण-निराकार जीवात्मा है ये अजन्मा है इसलिये मृत्यु भी इसे मार नहीं सकती। जीवात्मा ब्रह्म का ही अंश है अतः सनातन है। देखने वाला जीव है और दिखाई पड़ने वाला शरीर है। शरीर को ज्ञान नहीं है ये छाया के समान हैं व जीव पुरुष के समान है। हे जीव ! जो सच्चिदानंद ब्रह्म है वही तेरा भी स्वरूप है जैसे जो जल है वही लहर है, दोनों अभेद हैं। जीव लहर है और ब्रह्म जल है - आनंद सिन्धु है, इस प्रकार जीवात्मा और ब्रह्म की एकता बतायी गयी है। सारा दृश्यमान जगत छाया मात्र है। ईश्वर-जीव का भेद माया से हुआ है। **माया का भी वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है क्योंकि छाया पुरुष से ही उत्पन्न होती है व पुरुष में मिलकर पुरुष रूप ही हो जाती है अतः छाया भी पुरुष रूप है** ।।	
9	09- Jul -13	40	⊕	⊕		**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था** फिर परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से संसार को रहने के लिये अवकाश देने हेतु आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से→वायु से→अग्नि से→जल से→पृथ्वी से→औषधियाँ से→ अन्न से→ भूत-प्राणी/अखिल जगत उत्पन्न हुआ सर्वप्रथम आकाश आदि पंचभूतों का पंचीकरण होता है और २५ तत्त्वों का स्थूल शरीर बनता है स्थूल शरीर संरचना का सविस्तार वर्णन स्थूल शरीर में ही स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि नाम-रूप होते हैं व दिखाई पड़ने वाला संपूर्ण संसार होता है इसके भीतर अपंचीकृत पंचभूतों से १६ तत्त्वों (५कर्मे०+५ज्ञाने०+५प्राण+मन बुद्धि चित्त अहंकार) का सूक्ष्म शरीर होता है सूक्ष्म शरीर संरचना पाँच तत्त्वों से पाँच इन्द्रियाँ व इनके विषय बने :: - **पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ** - आकाश से श्रोत्र (शब्द), वायु से त्वचा (स्पर्श), अग्नि से चक्षु (रूप), जल से जिह्वा (रस), पृथ्वी से घ्राण (गन्ध) **पाँच कर्मेन्द्रियाँ** - आकाश से वाक् (वाणी), वायु से पाणि (लेनदेन), अग्नि से पाद (गमनागमन), जल से उपस्थ (मूत्र), पृथ्वी से पायु (गुदा) **पाँच प्राण** - प्राण (शुद्ध वायु-स्वाँस), अपान (अशुद्ध वायु-निःस्वाँस), समान - नाभि स्थान, अन्न-जल का पाचन एवं वितरण तथा ७ धातुओं का निर्माण - ये धातुऐं ही शरीर को धारण करती हैं व्यान - व्यापक, सन्धियों में हलचल, उदान - कंठ स्थान, खाये-पिये अन्न-जल का विभाजन **मन** वायु से बना है - चंचल है, **बुद्धि** अग्नि से बनी है, जहाँ ज्ञान प्रकट होता है एवं निश्चयात्मक है, **चित्त** जल से बना है - चिन्तन करता है, **अहंकार** पृथ्वी से बना है - ये अहंभाव उत्पन्न करता है अपने स्वरूप को न जानना ही - कारण शरीर कहलाता है **चौथा स्वरूप हमारा है** हम इन ३नों शरीरों में रहते हैं, तीनों को जानते हैं पर तीनों से अलग हैं। न हम स्थूल शरीर हैं, न हम सूक्ष्म शरीर हैं और न कारण शरीर हैं किन्तु ३नों शरीरों में रहने वाले व ३नों को जानने वाले हम ४थे हैं। ये तीनों शरीर किसी को नहीं जानते - न अपने को और न दूसरे को पर हम तीनों शरीरों को जानते हैं। हम बने नहीं हैं, तीनों शरीर तो बने हैं - पंचमहाभूतों से स्थूल-सूक्ष्म शरीर बने हैं और अज्ञान रूप कारण शरीर है। आत्मा-जीवात्मा तो बना नहीं है ये तो बना-बनाया है। ये ३नों शरीरों में केवल प्रवेश किया है। जीव ईश्वर का अंश है इसलिये जीव भी ज्ञान स्वरूप है, अविनाशी है। ये जीव ईश्वर का अंश होने से सुख-सिन्धु ईश्वर का ही रूप है ।।	
10	10- Jul -13	31	⊕			**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था** फिर उनसे रज्जु में सर्प के समान, पुरुष में छाया के समान माया का प्रादुर्भाव हुआ। माया के अव्यक्त आदि अनेक नाम हैं - परमात्मा की इस शक्ति को अनादि, त्रिगुणात्मिका, परा भी कहते हैं, ये अद्भुत् कार्य करती है, असम्भव को सम्भव बना देने में समर्थ है इसलिये इसे माया भी कहते हैं जो क्षण मात्र में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड की रचना कर देती है। इस प्रकार ब्रह्म से अव्यक्त तत्त्व उत्पन्न हुआ :: ब्रह्म→अव्यक्त →महत्तत्व/समष्टि बुद्धि→अहंतत्त्व/समष्टि मन/अहंकार→पंचतन्मात्रायें (शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध)→पंचमहाभूत (आकाश,वायु, अग्नि,जल,पृथ्वी)→नाम-रूप जगत ।। सभी नाम और रूप अलग-अलग होते हैं व नाम से ही रूपों का ज्ञान होता है। भगवान के ससा० और निनि० स्वरूप को जानने के लिये भी नाम ही एक साधन है। हाथ में यदि कोई कीमती वस्तु है पर उसका नाम नहीं जानते तो उसका कोई मूल्य नहीं दृ०-कुँजड़े की कथा भगवान भी यदि सामने खड़े हों और नाम न जानता हो तो भगवान को कोई कैसे पहचाने ? स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, गेहूँ चना आदि सबकी कीमत नाम जानने से होती है। हमारा गाँव भगवान का धाम है युग बीत गये चलते-२ पर नाम न जानने के कारण इतना पास होते हुए भी भगवान को पाने के लिये जीव भटक रहा है।	
11	11- Jul -13	35	सृष्टि क्रम * तीन शरीर तीन अवस्थायें पंचकोश *			**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था** फिर परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से संसार को रहने के लिये अवकाश देने हेतु आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से→वायु से→अग्नि से→जल से→पृथ्वी से→औषधियाँ से→ अन्न से→ भूत-प्राणी यानि ये जगत उत्पन्न हो गया सर्वप्रथम आकाश आदि पंचभूतों का पंचीकरण होता है और २५ तत्त्वों का समुदाय **स्थूल शरीर** की उत्पत्ति होती है स्थूल शरीर संरचना पंचभूतों के पंचीकरण से उत्पन्न २५ अंश इस प्रकार हैं :- **पृथ्वी के** - अस्थि, चर्म, नाड़ी, रोम, माँस, **जल के** - मूत्र, श्लेष्म, रक्त, स्वेद, वीर्य, **अग्नि के** - क्षुधा, तृषा, आलस्य, मोह, मैथुन, **वायु के** - हाथ-पैरों का फैलाना व सिकोड़ना, मुँह खोलना व बंद करना, स्वाँस लेना व छोड़ना तथा नेत्र खोलना व बंद करना, **आकाश के** - काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय । स्थूल शरीर में ही स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि नाम-रूप होते हैं व दिखाई पड़ने वाला संपूर्ण संसार होता है इसके भीतर अपंचीकृत पंचभूतों से १६ तत्त्वों (५कर्मे०+५ज्ञाने०+५प्राण+मन बुद्धि चित्त अहंकार) का सूक्ष्म शरीर होता है सूक्ष्म शरीर संरचना पाँच तत्त्वों से पाँच इन्द्रियाँ व इनके विषय बने :: - **पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ** - आकाश से श्रोत्र (शब्द), वायु से त्वचा (स्पर्श), अग्नि से चक्षु (रूप), जल से जिह्वा (रस), पृथ्वी से घ्राण (गन्ध) **पाँच कर्मेन्द्रियाँ** - आकाश से वाक् (वाणी), वायु से पाणि (लेनदेन), अग्नि से पाद (गमनागमन), जल से उपस्थ (मूत्र), पृथ्वी से पायु (गुदा) **पाँच प्राण** - प्राण (शुद्ध वायु-स्वाँस लेना), अपान (अशुद्ध वायु-स्वाँस छोड़ना), समान - नाभि स्थान/जठराग्नि, अन्न-जल का पाचन, विभाजन एवं वितरण तथा ७ धातुओं (रस-रक्त-माँस-मेदा-अस्थि-मज्जा-शुक्र) का निर्माण - ये धातुऐं ही शरीर को धारण करती हैं, व्यान - व्यापक, सन्धियों में हलचल, उदान - कंठ स्थान, खाये-पिये अन्न-जल का विभाजन **मन** वायु से बना है - चंचल है व संकल्प-विकल्प वाला है, **बुद्धि** अग्नि से बनी है, जहाँ चेतन आत्मा का प्रतिबिम्ब प्रकट होता है - बुद्धि निश्चयात्मक है, बुद्धि में ज्ञान प्रकट होता है **चित्त** जल से बना है - चिन्तन करता है, **अहंकार** पृथ्वी से बना है - ये अहंभाव उत्पन्न करता है जितने भी कर्म हैं वह सूक्ष्म देह में ही होते हैं। **गीताजी में भगवान ने कर्म के पाँच हेतु कहे हैं :-** १ **अधिष्ठान** - स्थूल शरीर २ **कर्ता** - साभास अंतःकरण ३ **करण** - कर्म करने के साधन - सभी इन्द्रियाँ :- श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ४ **विभिन्न चेष्टाऐं**/क्रियाऐं - प्राण ५ **दैवम्** - इन्द्रियों के अनुग्राहक देवता -	

			कर्म के ५ हेतु			आँखों के अनुग्राहक देवता सूर्य, कानों के दिशा, वाणी के अग्नि, हाथ के इन्द्र व पैर के वासुदेव हैं ।। मनुष्य शरीर वाणी या मन से, न्याय-अन्याय अथवा धर्म-अधर्म से जो भी कर्म प्रारम्भ करता है इन पाँच हेतुओं से ही सारे कर्म होते हैं। देह०इ०म०बु०प्रा० व देवताओं में जो हमारा आत्मा है उसे भगवान ने अकर्ता बताया है। आत्मा द्रष्टा-साक्षी मात्र है। नवद्वार की पुरी इस देह में आत्मा रहता है न कुछ करता है न कुछ करवाता है। परमात्मा में न कर्म है और न कर्तृत्व है और न लोकों का सृजन है। कर्मफल अथवा कर्मफलों का संयोग भी परमात्मा में नहीं होता। ये सब स्वभाव-वश होता रहता है। स्वभाव नाम प्रकृति का है । स्वभाव से ही संसार बनता-बिगड़ता रहता है। स्वप्न, जागृत और सुषुप्ति स्वभाव-वश यानि स्वयं ही होते हैं, हम न इन्हें बनाते हैं और न बिगाड़ते हैं, ये स्वयं ही होते रहते हैं।। आत्मा अकर्ता एवं द्रष्टा-साक्षी मात्र है - जो ऐसा जानता है वह ज्ञानी है ।। प्रकृति अथवा माया-राज्य में ही ये जा०-स्व०-सु० एवं दे०-इ०-म०-बु० (प्रकृति के कार्य) स्वयं ही होते रहते हैं अपने स्वरूप को न जानना ही - कारण शरीर कहलाता है। इन तीन शरीरों के अन्तर्गत् **जा०-स्व०-सु० तीन अवस्थायें** होती हैं - जागृत में स्थूल श०, स्वप्न में सूक्ष्म श० होते हैं तथा सुषुप्ति कारण शरीर है। सुषुप्ति में जा०-स्व० के शरीर लीन हो जाते हैं और फिर सुषुप्ति से ही प्रकट होते हैं इसलिये सुषुप्ति को कारण शरीर कहते हैं, वह अज्ञान-अंधकार रूप है अतः जा०-स्व०-सु० कहो या स्थू०-सू०-सु० कहो, एक ही बात है। इतनी ही प्रकृति है-माया है। इन्हीं तीन शरीरों के अन्तर्गत् **पंचकोष** का भी निरूपण आया है १ **अन्नमय कोश** = स्थूल शरीर २ **प्राणमय कोश** = पाँच प्राण+पाँच कर्मेन्द्रियाँ ३ **मनोमय कोश** = मन+पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ४ **विज्ञानमय कोश** = बुद्धि+पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ५ **आनंदमय कोश** = स्वरूप का अज्ञान या कारण शरीर। हम-आप केवल द्रष्टा-साक्षी हैं, हम ही ज्ञान स्वरूप हैं, इनों शरीर व इनों अवस्थाओं को ज्ञान नहीं है। जा०-स्व०-सु० को जो प्रकाशता है वह ब्रह्म है - जो ऐसा जानता है वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।
12	12- Jul -13	27				**वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद भगवान ही थे दूसरा कोई नहीं** था। पुरुष में छाया के समान उनमें माया का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान सत्य, ज्ञान और आनंद से पूर्ण हैं इसलिये उन्हें पुरुष कहते हैं। फिर माया ने जो सत्-रज-तम् तीन गुण वाली है, शुद्ध सत्वगुण की प्रधानता से **'विद्या'** और मलिन सत्वगुण की प्रधानता से **अविद्या** का रूप बना लिया। विद्या माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ा और वह सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान **ईश्वर** कहलाया जो जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करता है तथा अविद्या माया में पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अल्पज्ञ-अल्पशक्तिमान **जीव** कहलाया। ईश्वर और जीव दोनों ही कल्पित हैं क्योंकि माया कल्पित, विद्या-अविद्या कल्पित तथा उनमें पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब - सभी कल्पित हैं। फिर दोनों प्रतिबिम्ब ईश्वर और जीव ने सृष्टि की कल्पना कर दी। **ईश्वर की सृष्टि** = *'ईक्षण से प्रवेश पर्यन्त'* - एक अद्वितीय सच्चिदानंद परमात्मा ने अपनी माया/इच्छा शक्ति कि मैं एक से अनेक हो जाउँ स्वयं ही जगत (स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत) का रूप धारण कर लिया फिर उन्हें मुर्दा देखकर जीव रूप से उनमें प्रवेश कर गया और ये शरीर उठ खड़े हुए, देखने-सुनने लगे, एक-दूसरे की बात समझने लगे क्योंकि जीव में भी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होने से थोड़ा ज्ञान होता है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होने के कारण ये शरीर जीवित प्रतीत होते हैं व जीव के बाहर निकलने पर पुनः मुर्दा हो जाते हैं। **जीव की सृष्टि** = *'जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति व बन्ध-मोक्ष'* - इतनी सृष्टि जीव ने कल्पना कर दी । स्वप्न में जीव को ये संसार सूक्ष्म रूप से दिखाई पड़ता है व सुषुप्ति में ये स्वप्न जगत भी लीन हो जाता है। जागृत का स्थूल संसार है। सुषुप्ति से जा० और स्व० उत्पन्न होते हैं इसलिये सुषुप्ति **'कारण'** एवं जा०-स्व० **'कार्य'** कहलाये। अपने स्वरूप को न जानना **'बन्ध'** है जिसके कारण जीव जन्म-मरण को प्राप्त होता है तथा ये जीव जो जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा है जब कर्म उपासना, भगवान की भक्ति करता है, मन निर्मल और शान्त होता है और गुरु की शरण में जाता है तो गुरु की कृपा से वह अपने वास्तविक स्वरूप **'ब्रह्म'** को जानता है तब ये मुक्त हो जाता है। जीव और ईश्वर में जो ब्रह्म का स्वरूप है वो सत्य है और विद्या-अविद्या माया में जो प्रतिबिम्ब पड़ा है वह भी झूठा है जिनको जीव और ईश्वर कहते हैं क्योंकि प्रतिबिम्ब सभी झूठे होते हैं। तो विद्या-अविद्या माया झूठी, उसमें पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब झूठा और जीव-ईश्वर में जो ब्रह्म है वह सत्य है क्योंकि बिम्ब (ब्रह्म) नहीं होगा तो प्रतिबिम्ब किसका होगा अतः जीव-ईश्वर का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है, वो सत्य है और विद्या-अविद्या माया में दोनों प्रतिबिम्ब झूठे हैं। तो जब ईश्वर, गुरु और वेद कृपा से उसको अपने स्वरूप **'ब्रह्म'** का ज्ञान होता है कि मुझ जीव का असली स्वरूप प्रतिबिम्ब नहीं है और दे०-इ०-म०-बु० तो हो ही कैसे सकता है, **मेरा वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है तब ये मुक्त हो जाता है।** अतः मोक्ष पर्यन्त जा०-स्व०-सु० एवं जन्म-मरण के बन्ध का अनुभव करना और फिर ईश्वर-कृपा, गुरु-कृपा व अपनी आत्म-कृपा से अपने स्वरूप ब्रह्म को जानना - इसको मोक्ष कहते हैं - इतनी सृष्टि जीव की कल्पित है और जीव-ईश्वर में जो ब्रह्म चेतन है वही परम सत्य है। तो जीव का भी वही ब्रह्म वास्तविक स्वरूप है क्योंकि प्रतिबिम्ब का असली स्वरूप तो बिम्ब ही हुआ करता है, छाया का असली स्वरूप पुरुष ही होता है। तो हम बुद्धि में जो प्रतिबिम्ब है वह जीव है अतः हमारा वास्तविक स्वरूप बिम्ब रूप ब्रह्म है वह सत्य है और ये शरीर छाया रूप है, छाया का भी असली स्वरूप पुरुष होता है तो इस शरीर रूपी छाया का भी असली स्वरूप ब्रह्म है, जब ये ज्ञान होता है तो छाया ब्रह्म में लीन होती है और प्रतिबिम्ब बिम्ब में लीन हो जाता है फिर मुक्त ही है। छाया पुरुष में मिलकर पुरुष हो जाती है, प्रतिबिम्ब बिम्ब में मिलकर बिम्ब हो जाता है बस फिर बिम्बरूप ब्रह्म तो परम सत्य है ।।
13	13- Jul -13	38	* भगवान जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं *			**पितहमस्य जगतो ....ऋक्साम यजुरेव च** ।। गी०९/१७ ।। हे अर्जुन ! इस जगत का पिता भी मैं हूँ, माता भी मैं हूँ, जगत को मैं अपने ही ऊपर धारण करता हूँ इसलिये धाता भी मैं हूँ व पितामह भी मैं ही हूँ। मुझ परमात्मा को जानने का साधन ओंकार एवं ओंकार का विस्तार वेद भी मैं ही हूँ। व्यवहार में माता-पिता दोनों होते हैं तभी संतान होती है पर भगवान कहते हैं कि मैं ही माता-पिता हूँ यानि जगत का निमित्तोपादान कारण मैं ही हूँ। **उपादान कारण** का अपने कार्य में प्रवेश होता है जैसे माटी का घट में तथा **निमित्त कारण** कार्य सम्पन्न होने पर अलग हो जाता है जैसे कुम्भकार। निमित्त-कारण में *'ज्ञान-इच्छा-प्रयत्न'* तीन की आवश्यकता होती है। कुम्भकार को घट बनाने का ज्ञान है, घट बनाने की इच्छा करता है, फिर घट बनाने का कर्म करता है, वह घट बनाकर अलग हो जाता है पर उपादान-कारण माटी का कण-कण में प्रवेश होता है। माटी स्वयं घट नहीं बन सकती क्योंकि उसे ज्ञान-इच्छा-क्रिया (बुद्धि-मन-इन्द्रियाँ) नहीं है। संसार में जितने भी कर्म होते हैं वे निमित्त और उपादान-कारण दोनों से ही होते हैं। भगवान कहते हैं कि मैं निमित्त और उपादान दोनों कारण हूँ **दृष्टान्त** - १ **मकड़ी** - अपनी ही नाभि से तार निकाल कर जाल बुनती है और फिर स्वयं ही निगल जाती है ऐसे ही मैं जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण हूँ, रक्षा भी करता हूँ और फिर भक्षण करता हूँ। ब्रह्मा बनकर जगत की उत्पत्ति करता हूँ, विष्णु बनकर रक्षा और शंकर बनकर संहार करता हूँ फिर उसके बाद मैं अकेला ही रह जाता हूँ २ **पृथ्वी** - निमित्त और उपादान दोनों है जिससे औषधि और अन्न दोनों उत्पन्न होते हैं और फिर पृथ्वी में ही लीन हो जाते हैं ३ **शरीर के लोम** और **केश** की तरह अविनाशी परमात्मा से ये जगत उत्पन्न होता है, परमात्मा में रहता है और परमात्मा में ही लीन हो जाता है फिर अकेला ब्रह्म ही रह जाता है *'यतो वा ईमानि भूतानि जायन्ते ... तद् ब्रह्म'* - जिससे संसार उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है और जिसमें लीन हो जाता है वह ब्रह्म है - 'तत्त्वमसि', अर्जुन वही तुम्हारा भी स्वरूप है, फिर अकेला ब्रह्म ही रह गया। *'सर्वं ही एतद् ब्रह्म'* - सब ब्रह्म है, तो *'अयं आत्मा ब्रह्म'* - हमारा आत्मा ही ब्रह्म है। ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है - जैसे माटी से बने घट-मठ माटी से भिन्न नहीं हैं, माटी से घट-मठ बनते हैं, माटी में रहते हैं फिर माटी में मिल जाते हैं, जैसे जल से तरंगें उत्पन्न होती हैं, जल में रहती हैं फिर जल में ही लय हो जाती हैं फिर एक जल ही रह जाता हे ऐसे ही भगवान से ये जगत उत्पन्न होता है, घट-मठ या लहरों के समान भगवान में रहता है (भगवान आनंद सिन्धु व संसार लहरों के समान है) और भगवान में ही लय हो जाता है फिर एक भगवान ही रह जाते हैं मुझसे भिन्न कुछ नहीं है, मणियों में सूत के समान मैं ही ओत-प्रोत हूँ दूसरा कुछ नहीं है। जो चराचर जगत को मेरा ही रूप देखता है वह महात्मा दुर्लभ है। अर्जुन ! सब जीवों की आत्मा मैं ही हूँ। सभी जावों का आदि-मध्य-अन्त मैं ही हूँ। संसार में सर्वत्र मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है वैसे ही जैसे लहरों और बुलबुलों में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ज्ञानीजन सब लहरों में जल का ही दर्शन करते हैं - लहरें असत् हैं जल सत्य है, घट-मठों में माटी का दर्शन करते हैं क्योंकि सत्य माटी है घट-मठ तो बनते-बिगड़ते रहते हैं। भगवान कहते हैं कि ये जगत लहरों के समान है व सच्चिदानंद मैं आनंद सिन्धु हूँ।
14	14- Jul -13	29				**वेद त्रिकाण्डमय है** - कर्म काण्ड, भक्ति काण्ड व ज्ञान काण्ड, ३ काण्ड वेद में बताये गये हैं, इन्हें ही योग भी कहते हैं। तीनों का प्रयोजन भगवान के ज्ञान में व्यवधान क्रमशः चित्त का मल दोष, चित्त चंचलता एवं आवरण का नाश करना है। **कर्म काण्ड** - अनेक जन्मों के पापों से उत्पन्न मल का निष्काम कर्म से नाश हो जाता है। माता-पिता, गुरु/आचार्य, अतिथि एवं वृद्धजन की देव

						समान सेवा और अभिवादन करना चाहिये इनकी सेवा से 'आयु-विद्या-यशो-बलं' का आशीर्वाद प्राप्त होता हैं। **वृद्धों का तारतम्य –** १. वर्ण-वृद्ध = तीन गुणों से ४ वर्ण (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र) वाली सारी सृष्टि (मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष, पृथ्वी) बनी है, सत्वगुण प्रधान ब्राह्मण ४रों वर्णों में बड़े हैं २. वयो-वृद्ध = आयु में बड़े ३. विद्या-वृद्ध = विद्वान ४. ज्ञानी-वृद्ध = ब्रह्म-ज्ञानी सबसे बड़ा है ।।	
15	15- Jul -13	36	* क्षेत्र—क्षेत्रज्ञ /// दृग्दृश्य विवेक *			**गीता :: १३/१ ::** ईश्वर के अवतार, गुरुओं के गुरु भगवान कृष्ण कहते हैं हे कौन्तेय! जीव और ईश्वर में वास्तविक भेद नहीं है, भेद शरीरों की दृष्टि से है। हे अर्जुन! ये शरीर **क्षेत्र** हैं और जो शरीरों को जानता है उसको **क्षेत्रज्ञ** कहते हैं। जो जीवात्मा है वह क्षेत्रज्ञ है। हमारा आपका स्वरूप क्षेत्रज्ञ जीवात्मा है। हम ज्ञानवान हैं क्योंकि हम शरीर को जानते हैं। ये शरीर खेत के समान जड़ व जीवात्मा किसान के समान ज्ञानवान है। शरीरों में शुभ-अशुभ कर्मों की खेती है। इन शरीरों में जो भी बोया जायेगा वह फसल आने पर कई गुना होकर वापस आयेगा। सुख दोगे तो सुख अथवा दुःख दोगे तो दुःख कई गुना होकर लौटेगा इसलिये जो तुम अपने लिये चाहते हो वही दूसरों को दो। जो हम चाहते हैं वही संसार में सब चाहते हैं। हम ये शरीर नहीं अपितु हम ज्ञान स्वरूप जीवात्मा हैं **१३/२ ::** अर्जुन! सभी शरीरों-क्षेत्रों में जो क्षेत्रज्ञ-जीवात्मा है उसे तू मेरा ही स्वरूप जान। भीतर बैठकर सबकी आँखों से मैं ही देख रहा हूँ। ३ शरीर होते हैं, मनुष्य पशु-पक्षी आदि के आँखों से दिखाई देने वाले २५ तत्वों से बने 'स्थूल शरीर' हैं। इस शरीर के भीतर १६ तत्वों का सूक्ष्म शरीर है इसी में कर्म होते हैं, स्थूल-शरीर तो रहने का घर मात्र है। इस घर में बैठकर इ०म०बु०प्रा० से सब कर्म होते हैं। भगवान कृष्ण ने कर्म के ५ हेतु बताये हैं :- १. **अधिष्ठान**-स्थूल शरीर २. **कर्ता**-साभास चतुष्ट्य अन्तःकरण, बुद्धि में ज्ञान स्वरूप आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है इसलिये बुद्धि में भी थोड़ा ज्ञान होता है ३. **करण**-इन्द्रियाँ, आँख कान नाक आदि ४. **प्राण**-प्रेरक ५. **दैवम्**-इन्द्रियों के अनुग्राहक देवता - इन पाँच से सब कर्म होते हैं। आत्मा अकर्म है आत्मा में कोई कर्म नहीं होते। जितने भी कर्म हैं वह सब प्रकृति-राज्य में होते हैं। आत्मा नाम अपने स्वरूप का है। हम साक्षी-चेतन मात्र व गुणातीत है। तीसरा 'कारण शरीर' है - अपने स्वरूप को न जानना कि मैं सच्चिदानंद जीवात्मा हूँ मेरे एक शरीर में संसार भर के जीव जुड़े हुए होते हैं जैसे पीपल के वृक्ष में डाली शाखायें पत्ते और फल आदि, ये मेरा **विश्व-विराट स्वरूप** है दृ० गीता अ०११ में अर्जुन को भगवान का विश्व रूप दर्शन इसी प्रकार सभी जीवों के सूक्ष्म-शरीर मुझ ईश्वर के सू०श० **'हिरण्यगर्भ'** में जुड़े हुए हैं व ऐसे ही जीवों के जो अज्ञानरूप कारण शरीर हैं वो मेरे कारण-शरीर **'अव्याकृत'** या महामाया में जुड़े हुए हैं इन सब शरीरों के अन्तर्गत् शरीरों में बैठकर जो शरीरों को देख रहा है वह जीवात्मा के रूप में मैं ही बैठकर देख रहा हूँ। जो 'मैं' नामक तत्व है वह मैं ही हूँ इसी लिये तो सब कहते हैं - *अहं पश्यामि,* ये मैं नामक तत्व भगवान ही हैं बाकी तो सब क्षेत्र है। ये द्वैत दृश्य, तीनों शरीर/व्यष्टि-समष्टि सब शरीर मेरी माया से क्षण मात्र में बन जाते हैं - ये क्षेत्र हैं और इनको जानने वाला मैं ही क्षेत्रज्ञ हूँ तू अलग से कुछ भी नहीं, मेरे स्वरूप के अन्तर्गत् तू भी आ गया। इस प्रकार सारे संसार को क्षेत्र और स्वयं को क्षेत्रज्ञ बताया और अलग से कुछ नहीं रहा, सब भगवान के स्वरूप में ही आ गया। सबको अनुभव है कि शरीर हमको नहीं जानते पर हम शरीरों को जानते हैं जैसे किसान और खेत, खेत के समान ये ३नों शरीर जड़ हैं और हम किसान के समान भगवान हैं **इसलिये वेद कहता है** - *अहं ब्रह्मास्मि, सच्चिदानंदम् ब्रह्म* - ब्रह्म का स्वरूप सच्चिदानंद है, वही ब्रह्म तू है - *तत्वमसि* अतः ब्रह्म को अपना स्वरूप व अपने को परमपद रूप ब्रह्म जानो। *अयं आत्मा ब्रह्म, सो अयं आत्मा* (अथर्व वेद) - ये आत्मा और ब्रह्म का एकत्व है एवं समष्टि-व्यष्टि शरीरों का एकत्व है। शरीर सब माया मात्र हैं, इन्हें तो ज्ञान नहीं है शेष बचे हम द्रष्टा-साक्षी, द्रष्टा ब्रह्म है व दृश्य माया है - ये सभी वेदों का निर्णय है। स्वभाव सिद्ध हमारा स्वरूप द्रष्टा-साक्षी आत्मा है। दृश्य माया है, माया को ज्ञान नहीं है। *दृग्दृश्य द्वौरूपे स्तः परस्परविलक्षणौ, दृग्ब्रह्म दश्य मायेति सर्व वेदान्त निर्णयं ।।*	
16	16- Jul -13	32	श्रीमद्भागवत * भगवान विष्णु का ब्रह्मा को उपदेश *			वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में अकेले भगवान थे। सबसे पहले उन्होंने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मा जी को शोक-मोह से युक्त देखा तो उन्हें वेद का उपदेश किया और ब्रह्माजी शोक-मोह से मुक्त हो गये। **भगवान विष्णु का ब्रह्मा को उपदेश ::-** हे ब्रह्मन्! **परम गुह्यतम्-गोप्य जो ज्ञान है,** विज्ञान के सहित वह ज्ञान यानि **सामान्य** *(व्यापक)* एवं **विशेष** *(जो बुद्धि में प्रकट होता है)*- दोनों ज्ञान मैं तुम्हें देता हूँ। रहस्य और अंगों के सहित मेरे द्वारा कहा गया ये ज्ञान तुम ग्रहण करो। मैं जितना हूँ और जिस प्रकार से मैं प्रकट होता हूँ, जो मेरा रूप और गुण है तथा जो कर्म मैं करता हूँ वैसा का वैसा ही मेरे अनुग्रह से तुमको यह ग्रहण हो जाये अतः हे ब्रह्मन् ! सावधान मन से इसे ग्रहण करो सृष्टि के आदि में जब तू भी नहीं था तब अकेला मैं ही था, न सत् था, न असत् था और न सत्-असत् से परे था अर्थात् न जागृत था, न स्वप्न था और सुषुप्ति भी नहीं थी उसके पहले केवल मैं ही था और जा०-स्व०-सु० के रूप में जो ये दिखाई पड़ रहा है वो भी मैं ही हूँ और अन्त में जो शेष बचता है वह भी मैं ही हूँ। आदि में मैं ही था, अन्त में मैं ही रहता हूँ व मध्य में जो प्रतीत होता है वह भी मैं ही हूँ। मेरे बिना जो कुछ भी प्रतीत होता है और जो मेरी प्रतीति नहीं होती है, इस अज्ञान को भी माया ही कहते हैं जैसे अन्धकार में कभी अन्धकार से प्रकाश छिप जाता है असी प्रकार अन्धकार रूप माया आती-जाती है और प्रकाश रूप आत्मा को ढक लेती है 'आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी' पंच महाभूतों से सारी सृष्टि बनी हुई है। देवता, असुर, मनुष्य, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि सभी योनियों में ये पंचभूत प्रविष्ट हैं अतः विचार करो तो पंचभूत से भिन्न कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार से सारा संसार मुझसे उत्पन्न होता है, मुझमें रहता है और मुझमें ही लीन हो जाता है इसलिये ये पंचभूत व सारा संसार मुझसे भिन्न नहीं है क्योंकि कारण से कार्य अभिन्न होता है। फेन, बुद-बुदे, तरंगें जल से भिन्न नहीं हैं, जल ही सत्य है, तरंग को पकड़ने पर जल ही हाथ में आयेगा। तरंगें तो वायु के निमित्त से उठ गयीं हैं वे कल्पना मात्र हैं। तरंगें जल से उत्पन्न होती हैं जल में रहती हैं और जल में लीन हो जाती हैं तो वे जल से अलग कहाँ हैं इसी प्रकार से भगवान कहते हैं मुझसे ये जगत उत्पन्न होता है तरंगों के समान। मैं आनंद सिन्धु हूँ और ये संसार लहरें है जो मुझसे उत्पन्न होता है, मुझमें रहता है और लीन हो जाता है। कार्य-कारण रूप सब ब्रह्म ही है दूसरा कुछ भी नहीं है। कारण एक व कार्य अनेक होते हैं, कार्य अपने कारण-रूप ही होता है अतः कार्य कारण से भिन्न नहीं होता है। सम्पूर्ण ज्ञान इतना ही है। हे ब्रह्मन् ! इतना ही जानने योग्य है। जो सर्वत्र है और सर्वदा है वह परमब्रह्म परमात्मा मैं ही हूँ दूसरा कोई नहीं है। हे ब्रह्मन्! ये जो मैंने तुझको ज्ञान दिया है इसको परम समाधि के द्वारा तुम धारण करो तो सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय में तुम मोह को प्राप्त नहीं होगे अतः आदि में भगवान था, अन्त में भगवान है और मध्य में भी अनेक रूप में भगवान ही हैं। जैसे आदि-अन्त में जल है और मध्य में तरंगों के रूप में जल ही है ऐसे ही आदि-अन्त में आनंद-सिन्धु भगवान हैं और मध्य में लहरों के समान स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि हैं तो मध्य में भी दूसरा कोई नहीं आनंद-सिन्धु ही है ।।	
17	17- Jul -13	40	* ओंकार का स्वरूप निरूपण *			**वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में केवल भगवान थे और कोई नहीं था** फिर सबसे पहले उनसे **ओंकार** का प्रादुर्भाव हुआ। उत्पत्ति के पहले ये परमब्रह्म रूप ही था तब इसका नाम *'परा'* वाणी था, बोलने की इच्छा होने पर ये मन में आया तो इसका नाम *'पश्यन्ति'*, कंठ में आया तो *'मध्यमा'* तथा जब कंठ से मुख में आया और स्वर-व्यंजन में बिखर गया तो *बैखरी* कहलाया .. **ओंकार का स्वर-व्यंजन में विस्तार का वर्णन** .. ओंकार ने संसार के सभी स्वर-व्यंजनों का रूप धारण कर लिया इसीलिये इसे बैखरी कहते हैं क्योंकि ये स्वर-व्यंजन के रूप में बिखर गया। संसार के सभी नाम-रूप इन्हीं स्वर-व्यंजनों से बन जाते हैं। नामपद और क्रियापद से व्यवहार होता है। सुवन्त और तिगन्त की पद संज्ञा होती है व पद नाम को कहते हैं। सुवन्त-पद नाम और तिगन्त-पद क्रिया में होता है। सुवन्त और तिगन्त को जोड़ने से वाक्य बनता है। सारे व्यवहार नाम और क्रियापद को मिलाने से होते हैं। संसार भर के नाम-रूप एवं नाम और क्रियापद ओंकार यानि बैखरी वाणी (ओंकार) ने धारण कर लिये, नाम-रूप का समूह ही संसार है। संसार में नाम-रूप दो ही हैं व तीसरा इनको देखने वाला है .. **ओंकार का अर्थ ::-** ओंकार में **अ**=अकार, **उ**=उकार, **म**=मकार ३ मात्रायें हैं, तीनों को मिलादो तो एक अक्षर **ओम्** बन जाता है - ये भगवान का एक अक्षर का सबसे छोटा व सर्वश्रेष्ठ नाम है। जो ओ३म् का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ सच्चिदानंद ब्रह्म स्वरूप का ध्यान करते हुए जो प्राणों का त्याग करता है वह परमगति को प्राप्त हो जाता है जिससे ८४ लाख योनियों में गति समाप्त हो जाती है। **अकार-उकार-मकार** ने **वेदत्रयी** (ऋग्वेद+यजुर्वेद+सामवेद) का, **३ वृत्तियों** = सात्विक-राजसिक-तामसिक, **३ गुण** = सत्व-रज-तम, **३ देवता** = विष्णु-ब्रह्मा-महेश, **३ भुवन** = पाताल-भूतल-स्वर्ग का रूप धर लिया। इन तीनों विकारों से जो परे है वह सच्चि० भगवान शिव है उसको भी ये अमात्र से, मात्रा रहित ओंकार से बताता है - इस प्रकार समष्ट और व्यष्ट यानि समस्त संसार को और संसार से	

			⊕	अलग जो शिव तत्त्व है उसको भी ये ओंकार अमात्र से बताता है। फिर इसने **३ शरीर** = स्थू०-सू०-का०, **३ अवस्थाओं** = जा०-स्व०-सु० का रूप धर लिया। सारा संसार ओंकार का ही विस्तार है। भूत-भविष्य-वर्तमान ३नों काल का रूप धारण कर संसार में कुछ बचा नहीं जो ओंकार नहीं है। ओंकार भगवान का सर्वश्रेष्ठ नाम है। भगवान कहते हैं सब वेदों में मैं प्रणव हूँ, प्रणव नाम ओंकार का है। नाम अपने नामी को बताते हैं, नाम के बिना पहचान नहीं होती। भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूप को ओंकार ही बताता है। बिना नाम के स्त्री-पुरुष आदि किसी रूप की पहचान नहीं हो सकती। सारा संसार नाम-रूप वाला ओंकार है नाम-रूप को ज्ञान तो है नहीं तो .. **ओंकार भगवान को कैसे बताता है?** ओंकार कहता है कि ***इदं*** माने *यह* यानि 'विष्णु-ब्रह्मा-महेश /जा०-स्व०-सु०/ स्थू०-सू०-का० आदि समस्त संसार' - ये मेरा रूप है। तो ब्रह्म को तुम कैसे बताते हो? तो ओंकार कहता है कि - ब्रह्म को मैं तत् पद से बताता हूँ, ***तत्*** माने *वह* = **'ब्रह्म',** जा०-स्व०-सु० मेरा स्वरूप है, और मैं जिसको नहीं जानता हूँ क्योंकि मैं स्वर-व्यंजन रूप हूँ परन्तु जो मुझको जानता है - वह ब्रह्म है। वह जो ब्रह्म है, हे जीव! वही तेरा स्वरूप है इसलिये तुझ आत्मा और परमात्मा का एक स्वरूप है। अतः ३ शरीर, ३ अवस्थायें मेरा स्वरूप है तथा इनको जानने वाला **ब्रह्म** है **-** वह ब्रह्म मैं ही हूँ - जो ऐसा जानता है वह सब बन्धनों/दुःखों से छूट जाता है, इसे ही मुक्ति कहते हैं इसलिये अपने को ब्रह्म रूप जानो ..	
18	18- Jul -13	30	* सीता–राम का स्वरूप निरूपण *	**भगवान राम और सीता जगत के माता-पिता हैं।** सारा संसार इन्हीं से उत्पन्न होता है। इन्हें ही लक्ष्मी-नारायण, प्रकृति-पुरुष, माया-ब्रह्म कहते हैं। सम्पूर्ण जगत सीता-राम का ही परिवार है इसीलिये तुलसीदासजी कहते हैं - *'सियाराम मैं सब जग जानी, करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी'* अतः ये संसार सीता-राम का ही स्वरूप है। सीताजी जगत जननी हैं और राम जगत पिता हैं व निमित्त मात्र हैं, पुत्र की उत्पत्ति और पालन माता ही करती है। राम परमार्थ-रूप सच्चिदानंद-घन व्यापक ब्रह्म हैं ०० तुलसीदासजी कहते हैं सीताजी संसार की उत्पत्ति-पालन-संहार करती है और भक्तों के दुःखों का हरण व परम कल्याण करने वाली, भगवान राम को अत्यन्त प्रिय सीता माता को मेरा बारम्बार प्रणाम। संसार में ईश्वर और जीव के शरीर आते हैं पर ईश्वर और जीव के शरीर में जो सच्चिदानंद ब्रह्म है वह एक ही रूप है, उनकी उत्पत्ति सीताजी नहीं करतीं क्योंकि जीव की उत्पत्ति नहीं होती - जीव तो सच्चि० का स्वरूप है, ईश्वर (राम, कृष्ण, विष्णु) और जीव (स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी) के शरीर ही सीताजी बनाती हैं। भगवान राम सच्चि० ब्रह्म हैं और वो माया, माया के ३ गुण 'सत्-रज-तम्' एवं इन्द्रियों से परे हैं। राम की इच्छा-शक्ति ही सीताजी हैं, इच्छा से ही वे अपना शरीर और सारे संसार के शरीरों को उत्पन्न करते हैं अतः ईश्वर (राम, कृष्ण, विष्णु) और जीव (स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि) के शरीरों की उत्पत्ति, पालन और संहार भी सीताजी करती हैं परन्तु सामग्री कुछ नहीं लेतीं यानि बिना सामग्री के क्षण मात्र में वे अनंत कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न कर देती हैं ०० हमारी देखने की क्षमता बहुत सीमित है, बहुत दूर (स्वर्गादि लोक) अथवा बहुत पास की वस्तु भी हम नहीं देख सकते जैसे स्वयं अपना मुख भी अपनी आँखों से दिखाई नहीं पड़ता, हाँ अपना मुख हम दर्पण में देख सकते हैं। दर्पण में दीखने वाला मुख प्रतिबिम्ब होने से झूठा है, छाया वाले आँख-कान देखते-सुनते नहीं हैं पर सच्चे मुख का परिचय अवश्य करा देते हैं। दर्पण में दीखने वाली छाया सत्य नहीं है पर हाँ सत्य की परिचायक अवश्य होती है। इस प्रकार से ये संसार हमारे तुम्हारे शरीर की छायारूप है, छाया दिखाई पड़ती है पर सच्ची नहीं होती ०० पुरुष सच्चा होता है। सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण को पुरुष कहते हैं। राम सच्चिदानंद उदय-अस्त रहित ज्ञान के सूर्य हैं वहाँ मोह-माया का लवलेश भी नहीं है - ये राम का स्वरूप है और ये शरीर छाया के समान हैं इनको ज्ञान नहीं है। सब शरीरों में जीवात्मा के रूप में राम समाये हुए हैं। ईश्वर और जीव के शरीर तो सीताजी ने बना दिये पर वे छाया रूप हैं, उनमें चलने-फिरने की चेतनता कहाँ से आयेगी? राम जीवात्मा के रूप में सबके भीतर समाये हुए हैं, वही देखते हैं। द्रष्टा राम हैं और दृश्य माया/सीता माता हैं। हमारे तुम्हारे शरीर तो दृश्य ही हैं पर इनके भीतर बैठकर देखने वाला दिखाई नहीं पड़ता वह देखता है, वही राम का स्वरूप है और वही जीव का भी स्वरूप है। जीवात्मा के रूप में राम ही विराजमान हैं शेष सब शरीर सीता का रूप छाया मात्र हैं यानि शरीर छाया हैं और जीव राम हैं, तीसरा तो कोई है नहीं यानि **हम हैं द्रष्टा और हमारा शरीर है दृश्य - सम्पूर्ण रामायण का इतना ही सार है ।।**	
19	19- Jul -13	39	* गुरु महिमा एवं मदालसा का ज्ञानोपदेश *	**गुरु की महिमा सर्वाधिक है।** गुरु ही वेद मंत्र पढ़ कर उनका अर्थ बताता है। गुरु ब्रह्मा बन कर सात्विक विवेक वैराग्य षट्क-सम्पदा मुमुक्षुता आदि साधन उत्पन्न करते हैं, विष्णु बनकर इन सब साधनों की रक्षा करते हैं तथा शंकर बनकर काम क्रोध लोभ मोह दम्भ मद मात्सर्य आदि रिपुओं का संहार करते हैं तब परब्रह्म का ज्ञान होता है इसीलिये **गुरु को ब्रह्मा-विष्णु-महेश बताया गया है।** लौकिक अथवा पारमार्थिक, कोई भी ज्ञान बिना गुरु के नहीं आता, सभी ज्ञान गुरु ही देते हैं। वेद ने माता-पिता, आचार्य और अतिथि को देव बताया है, अतिथि जिसके द्वार से निराश होकर चला जाता है वहाँ वह दुष्कृत देकर व उसके पुण्य लेकर चला जाता है इसलिये अतिथि का सत्कार करना चाहिये। याचक भी घर-घर जाकर ये उपदेश देते हैं कि अन्न धन वस्त्र का दान करना चाहिये हमने पहले दान नहीं दिया इसलिये हमको यह नहीं मिला, जो देता है वही पाता है। बीज बोने वाले को ही पृथ्वी फल देती है। ये संसार भी गुरु है हमें इससे शिक्षा लेनी चाहिये। अच्छे-बुरे सब लोग गुरु हैं। माता-पिता की सेवा करना पुत्र का परम धर्म है इससे उसे सभी तीर्थों का फल मिल जाता है माता का स्थान पिता से १० गुना अधिक होता है क्योंकि सन्तानोत्पत्ति में पिता तो निमित्त मात्र होता है परन्तु उदर में धारण और पालन करने वाली माता ही होती है। माता को प्रथम गुरु बताया गया है क्योंकि माता अपने अबोध शिशु को, जिसका हृदय कोरे कागज़ की भाँति निर्मल है, जो भी ज्ञान देगी वह उसके हृदय में छप जायेगा **द्रु० सरस्वती की अवतार मदालसा का पुत्र को उपदेश** हे पुत्र ! हा-हा करके तू क्यों रो रहा है? तू अपने स्वरूप को सँभाल, तू शुद्ध-बुद्ध यानि बोध स्वरूप है, निरंजन यानि माया से परे है। माया दृश्य है व तू माया का द्रष्टा है। इस संसार रूपी माया से तू अलग है। ये संसार सपना है, हे पुत्र! तू मोह निद्रा को त्याग और अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा-ब्रह्म में जाग - इस प्रकार पुत्र को जगाती है और उसे उसका अपना स्वरूप सच्चि० ब्रह्म बताती है जो सदा रहता है। ये माया कभी जा०, कभी स्व०, कभी सु० का रूप बदल-बदल कर रोज़ आती-जाती रहती है। माया बड़ी चंचल है और तू अचल है। तू जागृत को देखता है - जा० की माया स्वप्न में नहीं रहती, तू स्वप्न को देखता है - स्व० की माया सुषुप्ति में नहीं रहती, तू सुषुप्ति को देखता है और सषुप्ति में रहता है - सुषुप्ति समाधि में नहीं रहती पर तू समाधि में रहता है। तेरे देखते-देखते कभी जा०, कभी स्व०, कभी सषुप्ति रोज़ आती-जाती रहती है पर तू तो आता-जाता नहीं है। तू आत्मा-ब्रह्म-द्रष्टा है अवस्थात्रेय परीक्षण → जागृत का जगत स्वप्न में नहीं रहता पर हम रहते हैं इसलिये हम सत् हैं, स्वप्न को हम देखते हैं इसलिये चिद या ज्ञानरूप हैं, स्वप्न सुषुप्ति में नहीं रहता पर हम रहते हैं - आत्मा सोती नहीं है, सो जाये तो सषुप्ति को देखेगा कौन? क्योंकि जा०-स्व०-सु० को ज्ञान नहीं है, ये तो जड़ माया है। हम सुषुप्ति में आनंद का अनुभव करते हैं पर वह सुषुप्ति का आनंद नहीं है अपितु अपना ही आनंद है। हमारा स्वरूप ही आनंद है। २४ घंटे में 'जा०-स्व०-सु०' ये माया बदल जाती है पर हे पुत्र ! तू तो २४ घंटे रहता है, तू तो बदलता नहीं। तू ३नों अवस्थाओं को देखता है इसलिये तू चेतन है, ३नों अवस्थाओं में तू रहता है इसलिये तू सत् है और तू ही आनंद स्वरूप है, शुद्ध-बुद्ध माया से मुक्त स्वरूप है माने माया से तेरा सम्बन्ध नहीं होता है। जड़ माया तुझे छू भी नहीं सकती। माया जड़ होने से किसी को पकड़ नहीं सकती चेतन ही पकड़ सकता है। से शरीर जड़ है इसमें हम रहते हैं। हम स्वतंत्र हैं ये शरीर हमें नहीं पकड़ सकता, ये माया जड़ है ये पकड़ सकती नहीं, चेतन स्वयं ही पकड़ता है और दुःख पाता है, माया किसी को नहीं पकड़ती। आत्मा ही एक चेतन है अतः अपने स्वरूप सत्-चित् आत्मा को पहचानो और सुखी हो जाओ। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त माया से लेकर कल्पित जगत है, सत्य एक परम ब्रह्म परमात्मा है वही तुम्हारा स्वरूप है ऐसा जानकर तुम सुखी हो जाओ। जा०-स्व०-सु० जड़ माया को पकड़ कर तुम्हीं दुःख पाते हो, तुम्हीं छोड़ दो। जा०-स्व०-सु० का जगत तुम्हारा दृश्य है ये तो तुम्हें छू नहीं सकता है, द्रष्टा को दृश्य नहीं छूता तो बँधेगा कैसे? दृश्य माया है द्रष्टा ब्रह्म है अतः तुम अपने को द्रष्टा ब्रह्म जानो - *'दृग्दृश्य द्वौरूपे स्तः परस्पर विलक्षणों, दृग्ब्रह्म दृश्य मायेती सर्व वेदांत निर्णय'* - द्रष्टा और दृश्य दो पदार्थ हैं जो परस्पर विलक्षण हैं, द्रष्टा सत्-चित्-आनंद है और दृश्य असत्-जड़-दुःख रूप माया है, तीसरा कोई पदार्थ नहीं है। हम आप तो द्रष्टा हैं, ये शरीर जन्मेगा तो मरेगा भी। सब शरीरों में समाया हुआ एक ही द्रष्टा जो देख रहा है वह हम ही हैं, वही आत्मा हमारा आपका स्वरूप है ।।	
20	20 - Jul -13	00	⊕ ⊕ ⊕	प्रवचन अनुपलब्ध	NA

21	21 - Jul -13	28	(आनंद रामायण) **श्रीराम जयरामजयजय राम** मंत्र का अर्थ * (अध्यात्म रामायण) **भ० राम का निनि० स्वरूप निरूपण**	**"श्रीरामजयरामजयजयराम" मंत्र का अर्थ एवं महिमा ::** राम शब्द के पूर्व श्री लगावें तो **'श्रीराम'** बन जायेगा, और मध्य में जय शब्द लगावें तो **'श्रीरामजयराम'** बन जायेगा, फिर मध्य में २ जय लगावें तो **'श्रीरामजयरामजयजयराम'** बन जायेगा। तीन जय आगे आये और राम के साथ जुड़े हुए हैं पर श्री के साथ एक भी जय नहीं जुड़ा है क्योंकि श्री नाम सीता का है। सीता राम से ही प्रकट होती हैं, राम के आश्रित रहती हैं और राम में ही समा जाती हैं। जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम सीताजी करती हैं। सीता राम से अलग नहीं हैं इसलिये जय तो सदा राम की है जिसकी न उत्पत्ति हो न नाश हो (निनि० स्वरूप की उत्पत्ति-नाश नहीं होता) । सीताजी राम से ही प्रकट होती हैं पुरुष से छाया के समान, इन्हीं को **प्रकृति** भी कहते हैं। जब इन्हें प्रकृति कहते हैं तो राम को **पुरुष** कहते हैं। इन्हीं का नाम लक्ष्मी भी है तो राम का नाम विष्णु हो जाता है। सृष्टि में इन्हीं दोनो के ही नाम हैं **/// सीताजी द्वारा हनुमानजी को भगवान राम का निनि० स्वरूप निरूपण** *'रामं विद्धि परम ब्रह्म....स्वप्रकाशं अकल्मशं'* → राम का निनि० स्वरूप परम ब्रह्म है। जो प्रकृति से परे हो उसे परम, वृहत् या सबसे बड़े को ब्रह्म तथा जो सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हो उसे पुरुष कहते हैं, राम पुरुष हैं सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हैं। वशिष्ठजी ने भगवान राम को सुख-धाम आनंद-सिन्धु कहा है जिनके एक बिन्दु मात्र से ही तीनों लोक आनंदित हो रहे हैं। उस सुखधाम को राम नाम से कहा जाता है, जो सम्पूर्ण लोकों को विश्राम देने वाला है। आनंद का कोई आकार नहीं होता, आनंद अनुभव की वस्तु है दिखाई पड़ने वाली वस्तु नहीं है। राम आनंद सिन्धु हैं व सारे संसार में राम के एक बिन्दु मात्र का ही आनंद है तो फिर किसी को यदि सारा संसार भी मिल जाये तो एक बूँद ही सुख मिलेगा। जिसे एक लोटा पानी की प्यास हो तो क्या एक बूँद पानी से उसकी प्यास बुझेगी? इसलिये संसारी लोगों को स्त्री-पुत्र-धन में एक बूँद का थोड़ा ही आनंद मिलता है तो बिना आनंद सिन्धु राम के मिले उसकी प्यास कैसे बुझे? अतः स्त्री-पुत्र-धन-त्रिलोकी के राज्य मिलने पर भी एक बूंद ही आनंद मिलेगा इसलिये राम के मिले बिना जीव की प्यास कभी नहीं बुझती। *राम मिलेगा तो एक बिन्दु आनंद तो आनंद सिन्धु में समा जायेगा और वह आनंद-सिन्धु रूप ही हो जायेगा।* ब्रह्म का अर्थ होता है राम से बड़ा संसार में कोई नहीं है :- **'सत्य'** *दृष्टि से वे सबसे बड़े हैं क्योंकि न उनकी उत्पत्ति होती है और न नाश होता है,* **'ज्ञान'** *की दृष्टि से वे अनंत-अखण्ड ज्ञान स्वरूप हैं जिस ज्ञान का न आदि-अंत है और न उत्पत्ति-नाश है,* **'आनंद'** *की दृष्टि से आदि-अन्त रहित आनंद के सिन्धु हैं तो प्रत्येक दृष्टि से राम से बड़ा कौन होगा? कोई नहीं है इसलिये राम का निर्गुण निराकार स्वरूप परम ब्रह्म है ।।*
22	22 - Jul -13	41	* सत्—असत् विवेक * भाग १	**गीता २/१६** संसार में सत् और असत् २ तत्त्व है तीसरा कुछ नहीं है। असत् का कभी भाव नहीं है और सत् का कभी अभाव नहीं है। 'अस्ति' = 'है', इसी को भाव कहते हैं अतः जो सदा है उसी को भाव कहते हैं। असत् का अस्तित्व नहीं होता, असत् सदा नहीं रहता पर सत् सदा रहता है। दृश्यमान संसार (जा०-स्व०-सु०) सदा नहीं रहता इसे असत् कहते हैं और जो जा०-स्व०-सु० को देखता है वह सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा सदा रहता है। हम ही तीनों अवस्थाओं को देखते है। आत्मा को ही अहं नाम से कहा जाता है। अपने देखने में किसी को संदेह नहीं है - *अहं पश्यामि* - मैं देखता हूँ, अतः ये *'अहं'* नामक तत्त्व 'मैं' सब शरीरों में एक ही है। शरीर तो अनेक हैं किन्तु हर शरीर में बैठा हुआ सबकी आँखों से देखने वाला द्रष्टा-साक्षी एक ही देव है वह सब भूत-प्राणियों में छिपा हुआ है। द्रष्टा देखता है दिखाई नहीं पड़ता। सब शरीर दृश्य हैं, जड़ हैं देख नहीं सकते। द्रष्टा तो सत् है वह सबको देखता है। जो सत् रूप है वह चिद् और आनंद रूप भी है - ये ब्रह्म का स्वरूप है। अर्जुन तुम्हारा स्वरूप भी ब्रह्म है क्योंकि तुम भी देखते हो। द्रष्टा/आत्मा/ब्रह्म सदा एक समान रहता है पर दृश्य - देश/काल/वस्तु बदलते रहते हैं यानि शरीर और जा०-स्व०-सु० बदलते रहते हैं और हम सदा एक समान रहते हैं इसलिये 'सत्' हैं, हम ही जा०-स्व०-सु० को देखते हैं इसलिये 'चिद्' हैं। हमारा अथवा हमारी दृष्टि का कभी अभाव नहीं होता। रात-दिन आते-जाते रहते हैं उन्हें हम देखते हैं पर ये हमें नहीं जानते। पल-घड़ी-घंटे-दिवस-पक्ष-मास-वर्ष-युग-कल्प आते-जाते रहते हैं पर हम इन्हें देखने वाले सदा रहते हैं, जाने वाले का अभाव और आने वाले का भाव देखते रहते हैं। हम सदा वर्तमान हैं हममें भूत-भविष्य नहीं होता। आत्मा सनातन है। कितने ही वर्ष-युग-कल्प आये और चले गये तथा आगे भी जायेंगे परन्तु हमारा तुम्हारा ज्ञान उदय-अस्त रहित, अखण्ड, एक समान प्रकाशमान रहता है, इसी को ब्रह्म कहते हैं। अनेक शरीरों में द्रष्टा एक है। द्रष्टा और दृश्य दो ही पदार्थ हैं व परस्पर में विलक्षण हैं। द्रष्टा सत्-चित्-आनंदरूप आत्मा है तथा दृश्य असत्-जड़-दुःखरूप माया है। आने-जाने वाली को माया कहते हैं और जो माया को देखता है व अचल रहता है उसे ब्रह्म कहते हैं। जा०-स्व०-सु० माया है, हम तीनों को देखते हैं व सदा रहते हैं। २४ घंटे में जा०-स्व०-सु० तीनों बदल जाते हैं पर देखने वाले की उम्र नहीं होती क्योंकि उसका जन्म नहीं होता तो मृत्यु भी नहीं होती, शरीर का ही जन्म-मरण होता है अतः अर्जुन ! अपनी आत्मा में अमृत है मृत्यु नहीं है इसलिये निवृत्ति मैं किसकी करूँ? आत्मा सत्-अमृतरूप है इसलिये अमृत की प्राप्ति नहीं बनती और दुःख आत्मा में है नहीं तो निवृत्ति किसकी करूँ? सुखरूप आत्मा स्वयं है तो प्राप्ति किसकी करूँ? अज्ञान आत्मा में है नहीं, आत्मा ज्ञान स्वरूप है इसलिये ज्ञान की प्राप्ति नहीं बनती है अतः आत्मा सत्-चित्-आनंद रूप है, आत्मा को केवल जानना ही कर्तव्य है, वह हमारा अपना स्वरूप है। जा०-स्व०-सु० माया है उससे मैं अलग और असंग हूँ ।।
23	23 - Jul -13	47	* आत्म अनात्म विवेक * भाग २	**गीता २/१६** अर्जुन सत् और असत् २ तत्त्व है तीसरा कुछ नहीं है। असत् का कभी भाव या अस्तित्व नहीं है और सत् का कभी अभाव नहीं होता, वह सदा रहता है। असत् स्वप्न की तरह दिखाई तो पड़ता है पर रहता नहीं है। स्वप्न को देखने वाला स्वप्न को देखता है और स्वप्न के बाद जागृत को भी देखता है। स्वप्न द्रष्टा सत्य है क्योंकि वह सदा रहता है, स्वप्न झूठा है वह जागृत में नहीं रहता ऐसे ही जा० का जगत स्व० में नहीं रहता पर जा० को देखने वाला स्व० में भी रहता है **दृ०** स्वप्न में राजा भिखारी और भिखारी राजा बन जाता है पर जागो तो कहीं कुछ नहीं. ऐसे ही जागृत का जगत है, जा० में संसार की सब सामग्री धन-राज्य आदि इकट्ठा किया और स्वप्न में सब खत्म हो जाता है। जा० के अन्न-जल स्व० में काम नहीं आते & vice versa. जा० में स्व० झूठा ऐसे ही स्व० में जा० झूठा इसलिये दोनों झूठे हो गये पर स्वप्न को देखने वाला जागृत में है और जागृत को देखने वाला स्वप्न में है अतः हमारा यानि देखने वाले द्रष्टा का स्वरूप सत्य है क्योंकि हम दोनों को देखते हैं। स्व०-जा० के न रहने से द्रष्टा का नाश नहीं होता। हमारा सुषुप्ति में भी नाश नहीं होता जहाँ जा०-स्व० दोनों नहीं होते पर हम सु० में भी रहते हैं। ये तीनों असत्य हैं क्योंकि ये बदलते रहते हैं पर हम सत्य हैं क्योंकि कम सदा रहते हैं इसलिये अपने को द्रष्टा-साक्षी मानो एवं जा०-स्व०-सु० को माया जानो, (**मा** = जो, **या** = होवे नहीं पर दिखाई पड़े) झूठे को सपना अथवा माया कहते हैं। २४ घंटे की उम्र न जागृत की है, न स्वप्न की है और न सुषुप्ति की ही है - २४ घंटे में तीनों बदल जाते हैं पर जा०-स्व०-सु० को देखने वाले हम सदा रहते हैं, अपना कभी अभाव नहीं होता। जा०-स्व०-सु० तीनों माया मात्र हैं। आत्मा दिखाई नहीं देता पर देखता है, सदा रहता है। द्रष्टा का आकार तो है नहीं, आकार तो शरीरों के हैं जो माया से बने हैं। जागृत में स्थूल तथा स्वप्न में सूक्ष्म शरीर होते हैं, सुषु० में दोनों नहीं रहते। हम आप द्रष्टा हैं इसलिये ब्रह्म हैं *'एको देवा सर्वभूतेषु गूढः ... केवलो निर्गुणश्च'* - एक ही देव है जो सब भूतों के भीतर छिपा हुआ है, देखने वाले देव तथा दिखाई पड़ने वाले देह देवालय हैं। सबकी आँखों से देखने वाला एक ही देव है वह देखता है दिखाई नहीं पड़ता *'देहो देवालय प्रोक्ता ...सोऽहं भावेन पूजयेत्'* - इस देह को देवालय कहा गया है इसके भीतर जो जीव है वह केवल शिव का स्वरूप है, वह कल्याण-स्वरूप अपनी आत्मा है। अज्ञान रूपी निर्माल्य को त्यागो - **'मैं स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-क्षत्रिय हूँ'** ये **अज्ञान** है, स्त्री-पुरुष शरीरों के नाम हैं इनके भीतर बैठकर देखने वाला अवाँगमनसगोचर है, उसका नाम-रूप नहीं है - ये देखने वाला ही ज्ञान स्वरूप देव है। **'मैं देह हूँ'** इस अभिमान का त्याग करो और **'मैं देव हूँ, देखने वाला हूँ',** ऐसा अभिमान करो क्योंकि ये स्वयं सिद्ध है। एक ही देव है उसे ही साक्षी, चेतन, परमात्मा कहते हैं जो आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है, सभी भूत-प्राणियों की अन्तरात्मा है। आत्मा सबसे भीतर, बुद्धि के भी भीतर है। हम बुद्धि को, मन को, इन्द्रियों को भी देखते हैं और इन्द्रियों के द्वारा संसार को भी देखते हैं पर हमें कोई नहीं देखता। आत्मा सबसे भीतर और सबसे प्यारा है। जो सुख देता है वही प्यारा होता है **प्रियता की तारतम्यता** - धन से पुत्र प्रिय→शरीर→इन्द्रियाँ→प्राण →प्राणों से भी अधिक आत्मा प्रिय होती है सुख को ही प्रियता कहते हैं आत्मा प्राणों से भी ऊपर, दे०इ०म०बु० सभी का द्रष्टा, सत्रूप-सुखरूप-ज्ञानरूप है। आत्मा स्वार्थी है इसलिये स्त्री-पुत्र-धन आदि सब अपने सुख के लिये प्यारे लगते हैं। स्वभाव की ओर सबका खिंचाव होता है, आत्मा का स्वभाव सुखरूप है तो अपने स्वभाव की ओर आत्मा खिंचेगा ही। सुखरूप आत्मा को ब्रह्म कहते हैं। आत्मा सच्चिदानंद ब्रह्म-स्वरूप है। वेद कहता है, हे जीव! वही तेरा स्वरूप है। ये संसार जड़ माया का स्वरूप है और हमारा आत्मा आकाश के समान सर्वत्र व्यापक असंग नित्य ब्रह्म है ।।

24	24 - Jul -13	27	भगवान राम का निर्गुण—निराकार स्वरूप निरूपण	सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण :: *'रामं विद्धि परम् ब्रह्म ... स्वप्रकाशं अकल्मषं'* :: हे हनुमान! राम का निनि० स्वरूप सच्चिदानंद परम् ब्रह्म है। वे प्रकृति से परे हैं इसलिये परम् हैं, सबसे बड़े हैं इसलिये ब्रह्म हैं व इनका स्वरूप सच्चिदानंद है। सदा रहते हैं इसलिये सत् हैं, उदय-अस्त रहित ज्ञान के सूर्य हैं इसलिये चित् हैं तथा अनंत-अखण्ड आनंद के सिन्धु हैं। नाम और रूप को ही संसार कहते हैं। आँखों से दिखाई देने वाले रूप हैं तथा इन्हें पहचानने के लिये नाम हैं। नाम के बिना स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी का अथवा भगवान के निनि०-ससा०स्वरूप किसी का ज्ञान नहीं होता। ये जगत दृश्य है और देखने वाले राम ही हैं। द्रष्टा राम निराकार हैं और शरीर साकार हैं। घटाकाश-महाकाश की भाँति शरीरों के भीतर वे आत्मा और बाहर परमात्मा कहलाते हैं। ऐसे ही राम का निनि० स्वरूप आकाश से भी सूक्ष्म और महान है। ये चेतन रूपी आकाश भूताकाश में भी प्रविष्ट है जो सबके भीतर-बाहर परिपूर्ण है। राम सत्ता मात्र हैं, राम का निनि० स्वरूप अगोचर, आदि-अन्त रहित आनंद का सिन्धु, निर्मल, प्रशान्त महासागर की तरह शान्त और निर्विकार है। राम के निनि० स्वरूप का जन्म नहीं होता, वे निरंजन यानि माया से परे हैं। तीनों गुण और इन्द्रियों से परे राम ने गऊ और ब्राह्मणों की रक्षा और कल्याण के लिये स्वेच्छा से ससा० रूप धारण किया है। राम का निनि० स्वरूप कण-कण में व्यापक है। राम हर देश, काल और वस्तु में हैं। हे हनुमान! राम सभी जीवों की अपनी आत्मा, अपना स्वरूप है। ये जीवात्मा राम का ही अंश है, अंश अंशी का ही स्वरूप होता है। सभी जीव अमृत यानि परमात्मा के ही अंश हैं। अविनाशी जीव का जन्म-मरण नहीं होता। सब शरीरों के भीतर बैठकर राम ही देख रहे हैं। वह स्वयं ही प्रकाशरूप हैं। संसार के सभी प्रकाश जड़ हैं एवं पर-प्रकाश्य हैं पर इन सबके प्रकाशक उदय-अस्त रहित अखण्ड ज्ञानरूपी परम प्रकाश राम हैं जो एक समान प्रकाशमान रहते हैं। जीव का भी ज्ञान अखण्ड है। राम का अंश होने से जीव भी चेतन, अमल, अविनाशी व स्वभाव से ही सुखराशि है। आनंद-सिन्धु की लहर भी आनंद-सिन्धु ही है ।।	
25	25 - Jul -13	42	* सत्—असत् ब्रह्म—माया विवेक * भाग ३	गीता २/१६ :: *अर्जुन! सत् का कभी अभाव नहीं होता और असत् का कभी भाव नहीं होता। जो सदा रहता है उसे भाव तथा विपरीत को अभाव कहते हैं। ये जगत सदा नहीं रहता इसलिये इसे अभाव कहते हैं व हमारा आत्मा सदा रहता है इसलिये उसे भाव कहते हैं - आत्मा भाव रूप है। जा०-स्व०-सु० इतनी माया है, प्रकृति है ये आती-जाती रहती है इसीलिये इसे अभाव रूप कहते हैं।* हमारा तुम्हारा आत्मा सदा रहता है। इस माया को देखने वाला सत्-चित्-आनंद रूप ब्रह्म है, वह सदा रहता है इसलिये सत् है, माया को देखता है इसलिये चित् तथा आनंद सिन्धु है, अर्जुन! वह सच्चिदानंद ब्रह्म ही तेरा स्वरूप है। जा०-स्व०-सु० माया है व इसे देखने वाला ब्रह्म है वही ब्रह्म हमारा तुम्हारा आत्मा है, आत्मा और ब्रह्म एक है। माया असत्-जड़-दुःख रूप है। २४ घंटे में जा०-स्व०-सु० तीनों बदल जाती हैं। सुषु० कारण माया है व जा०-स्व० कार्य माया है। सुषुप्ति में जा०-स्व० लीन हो जाते हैं और उसी से वे उत्पन्न होते हैं इसलिये उन्हें कार्य माया कहते हैं। स्व० का मन में सूक्ष्म संसार है और जा० का स्थूल संसार है। जा० का जगत सोने पर स्व० में लीन हो जाता है और केवल मन में दिखाई पड़ता है, जब मन भी लीन हो जाता है तो उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। ये तीनों आती-जाती रहती हैं। हमारा आत्मा तीनों को देखने वाला सदा रहता है, अर्जुन वही तेरा स्वरूप है। जा०-स्व०-सु० को देखने वाला आत्मा तो बदलता नहीं है वह सदा एक समान प्रकाशमान रहता है। जागृत स्व० में नहीं रहता, स्वप्न सुषु० में नहीं रहता तथा सुषुप्ति समाधि में नहीं रहती पर हम रहते हैं, हम लीन नहीं होते। जा०-स्व०-सु० तीनों को देखने वाले द्रष्टा साक्षी हम ४थे तुरीय आत्मा स्वयं सिद्ध हैं इसलिये अपने को आत्मा जानो। आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मा सदा रहता है, प्रकृति (जा०-स्व०-सु०) आती-जाती रहती है। अर्जुन! इन सत्-असत् को तत्त्व-दर्शियों ने सम्यक प्रकार से देखा है अतः हमारा स्वरूप आत्मा है २/१७ :: अविनाशी तो तुम उसे जानो जो आकाश के समान इन जा०-स्व०-सु० में व्यापक है। इस अविनाशी को मारने में कोई भी समर्थ नहीं है, मृत्यु भी इसे नहीं मार सकती क्योंकि आत्मा का जन्म नहीं होता। आत्मा निनि० अखण्ड-ज्ञान-स्वरूप सदा एक समान प्रकाशमान रहता है। शरीर का जन्म होता है अतः उसकी मृत्यु भी ध्रुव है, अटल है पर इन शरीरों के भीतर बैठकर जो देख रहा है वह देखने वाला 'मैं' यानि आत्मा अमर है। ये शरीर मन्दिर हैं व इन सबमें छिपा हुआ देखने वाला देव है, वह निनि० है, दिखाई नहीं पड़ता है पर देखता है और शरीर दिखाई देते हैं पर देख नहीं सकते क्योंकि वे जड़ हैं। शरीर रूपी मन्दिर अनेक हैं पर इनमें देखने वाला देव एक ही है। भगवान शंकर कहते हैं कि हे पार्वती! ये देह देवालय हैं और इन सब मन्दिरों में बैठकर देखने वाला मैं शिव ही हूँ अतः 'मैं देह-स्त्री-पुरुष हूँ' इस भाव का त्याग करो। पंचभूतों से सबके शरीर बने हैं अतः देह तो जड़ है पर देव तो पंचभूतों से बना नहीं है, देव तो अनादि अनंत ब्रह्म है इसलिये अर्जुन तुम स्वयं को देखने वाला देव-ब्रह्म जानो क्योंकि सबको निस्सन्देह ये ज्ञान है कि मैं देखता हूँ और देखना ज्ञान में ही बनता है, ऐसा ज्ञान स्वभाव से ही सबको है। हमारा द्रष्टा स्वरूप तो स्वभाव सिद्ध है - छोटा बालक भी पैदा होते ही देखता है, जानना या देखना एक ही बात है। जिस आत्मा से सब देश-काल-वस्तु व्याप्त हैं वह अविनाशी तत्त्व हमारा आत्मा है, इसे मारने के लिये मृत्यु भी समर्थ नहीं है अतः अर्जुन, अपने को तुम आत्मा जानो और शरीर को पंचभूतों से बने मन्दिर जानो। जो सब शरीरों में व्यापक है व सबकी आँखों से देख रहा है - वह ब्रह्म है तथा वही हमारा तुम्हारा स्वरूप है - जो ऐसा जानता है वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है । अजपा गायत्री मंत्र का सविस्तार वर्णन इसका ध्यान करने से जीव भव-सागर से पार हो जाता है। सोहं एक मंत्र है इसको अजपा जप कहते हैं। स्वाँस का बाहर जाना सो और अन्दर आना अहं बताता रहता है। 'सो-अहं' अर्थात् वह ब्रह्म मैं हूँ Details @ 34 min	
26	26 - Jul -13	34	भगवान राम का नि०नि० स्वरूप एवं सीताजी का स्वरूप निरूपण	सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण :: हे हनुमान ! सावधान मन से श्रवण करो - *'रामं विद्धि परम् ब्रह्म ... स्वप्रकाशं अकल्मषं'* :: राम का निनि० स्वरूप सच्चिदानंदघन परम् ब्रह्म है। वे सारे शरीरों में आकाश की तरह व्याप्त हैं। शरीरों के भीतर रहने से व सबकी आँखों से देखने के कारण उन्हीं को जीवात्मा कहते हैं और शरीरों के बाहर परिपूर्ण होने से उनको ही परमात्मा भी कहते हैं। शरीरों के भीतर-बाहर भेद से जीवात्मा और परमात्मा उनके दो नाम हैं। राम आकाश के समान अखण्ड हैं - इस प्रकार से जीव और राम का जो निनि० स्वरूप है वह सच्चिदानंद ब्रह्म ही है। ईश्वर का अंश होने से जीव का स्वरूप भी चेतन है, निर्मल अमल अविनाशी और सहज सुखराशि है। अंश और अंशी में भेद नहीं होता, जो अंशी होता है उसका अंश भी वही होता है। प्रसंग से सीताजी द्वारा अपना स्वरूप निरूपण हे हनुमान! मुझे मूल प्रकृति कहते हैं। राम पुरुष हैं और मैं प्रकृति हूँ। जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार मैं करती हूँ। शरीरों का समूह ही संसार है। ईश्वर और जीव दोनों के शरीर मैं ही बनाती हूँ। मुझ प्रकृति का काम जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करना है पर शरीरों के भीतर जो जीवात्मा है उसकी तो उत्पत्ति होती नहीं है। जीवात्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु उसे मार नहीं सकता, वह राम का ही स्वरूप है। मुझे महामाया शक्ति कहते हैं। शरीरों (दे०इ०म०बु०प्रा०) के आने-जाने को ही जगत कहते हैं // संक्षेप में राम कथा // राम तो द्रष्टा-साक्षी हैं वह दिखाई नहीं पड़ते वैसे ही जैसे प्रकट अग्नि तो दिखाई पड़ती है पर व्यापक अग्नि दिखाई नहीं पड़ती। राम का निनि० स्वरूप तो सर्वत्र व्यापक है और ससा० स्वरूप तुम साक्षात् देख ही रहे हो जिसे मैं ही बनाती हूँ। // सहस्त्रमुख रावण की कथा // अब मेरे हँसने का कारण तो तुम जान गये होगे, व्यर्थ ही तुम राममें कर्म का आरोप कर रहे थे। राम अकर्म हैं सब कर्म मुझ प्रकृति में ही हैं ७ *'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः, अहंकारं विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते'* ।।	
27	27 - Jul -13	37	* आत्मा का स्वरूप *	गीता २/१६ :: अर्जुन! संसार में **सत्** और **असत्** दो वस्तुऐं हैं। दिखाई पड़ने वाले जा०-स्व०-सु० को प्रकृति/माया कहते हैं। जगत में दिखाई पड़ने वाले शरीर सदा नहीं रहते इसलिये वे असत् हैं परन्तु शरीरों के भीतर जो जीवात्मा है वह सदा रहता है अतः वह सत् है। **हमारा स्वरूप जीवात्मा है** २/१७ जिस आत्मा से सारा जगत-दृश्यवर्ग व्याप्त है उसे अविनाशी कहते हैं, इसकी मृत्यु नहीं होती वह निनि० है। शरीर ही ससा० हैं व इन्हीं का जन्म-मरण होता रहता है। इस अविनाशी आत्मा का नाश करने में कोई समर्थ नहीं हैं २/१८ हे भारत! भरत वंश में जन्म लेने वाले अर्जुन! ये जो दिखाई पड़ने वाले देह हैं इन्हीं का अन्त-वन्त होता है तथा हमारा तुम्हारा द्रष्टा-साक्षी आत्मा अप्रमेय और अविनाशी हैं। माया के शरीर ही नाशवान हैं, दे०इ०म० बु० में कर्म हैं इसलिये इनसे कर्म करो तथा जीवात्मा तो अविनाशी द्रष्टा-साक्षी है अतः अपने स्वरूप में स्थित रहो २/१९ अर्जुन! ये आत्मा न किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है क्योंकि आत्मा अजन्मा और अकर्म है। जो इस आत्मा को मरने या मारने वाला समझता हैं वे आत्मा को नहीं जानता २/२० अपना जो स्वरूप द्रष्टा-साक्षी आत्मा है उसका जन्म नहीं होता है इसलिये मृत्यु भी नहीं होती क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म है। शरीरों का जन्म होता है तो मृत्यु शरीरों को मार सकता है। सब शरीरों के भीतर बैठकर देखने वाला एक ही आत्मा है वह परमात्मा का ही स्वरूप है। आत्मा न जन्मता है और न मरता है तथा न उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है क्योंकि आत्मा **अज** (अजन्मा), **नित्य** (सदा रहने वाला), **सर्वगत** (आकाश के समान सर्वत्र	

			* भ० गी० २/१६–२० * भाग ४	व्यापक, इतना सूक्ष्म कि आकाश में भी प्रविष्ट व इतना बड़ा कि आकाश से भी महान), **स्थाणु** (खम्बे के समान ठोस), **अचल** (आकाश की भाँति सर्वत्र), **सनातन** (सदा से) और **पुरातन** है। शरीर के नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता है। स्त्री-पुरुष देवी-देवता पशु-पक्षी आदि का भेद शरीरों में ही है आत्मा तो सबमें एक समान व्यापक है। आत्मा एक अद्वितीय सबके भीतर बैठकर देखने वाला द्रष्टा-साक्षी है। शरीरों का नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता जैसे घट के टूटने पर घटाकाश का नाश नहीं होता वह महाकाशरूप हो जाता है वैसे ही ये शरीर घट के समान उत्पन्न और नाश होते हैं पर आत्मा तो सब शरीरों में व्यापक है, शरीर का नाश हो गया तो जीवात्मा और परमात्मा का भेद भी मिट गया - वह महाकाश रूप ही हो गया। अर्जुन आत्मा में मृत्यु है ही नहीं तो मृत्यु की निवृत्ति क्या बताऊँ? आत्मा सदा सुख और शान्तरूप है इसलिये सुख-शान्ति प्राप्त नहीं करनी है। आत्मा में दुःख और मृत्यु है नहीं तो निवृत्ति किसकी की जाये? ईश्वर का अंश होने से जीव भी अविनाशी है इसलिये इसका जन्म-मरण नहीं है, ईश्वर चेतन है इसलिये जीव भी चेतन यानि ज्ञान-स्वरूप है तथा अमल और स्वभाव से ही सुखराशि है। **आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है - ये जानना ही कर्तव्य है, हे जीव ! वही तेरा भी स्वरूप है।** ये शरीर ही नाशवान है अतः अपने को शरीर मत मानो अपितु शरीर को देखने वाला आत्मा मानो ।।	
28	28 - Jul -13	39	* आत्मा का स्वरूप * * भ० गी० २/२० * भाग ५	**गीता २/२०** :: *'न जायते म्रियते वा कदाचित् ... हन्यमसने शरीरे '* अर्जुन! शरीर और शरीरी ये दो ही तत्त्व हैं। जो दिखाई पड़ते हैं वे देह व इनके भीतर बैठकर देखने वाला देही है। देही-जीवात्मा हमारा स्वरूप है इसका जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती क्योंकि जन्मने वाले की ही मृत्यु होती है। जीवात्मा का जन्म नहीं होता, ये शरीर ही जन्मते-मरते हैं व ये शरीर मेरी माया से बन जाते हैं। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड मेरी माया क्षण मात्र में बन जाते हैं क्योंकि ये संसार बिना सामग्री के ये माया बना देती है जैसे स्वप्न का संसार क्षण मात्र में बन जाता है इसी प्रकार ये संसार भी स्वप्नवत् झूठा है। जैसे जा० में स्व० नहीं रहता वैसे ही स्व० में जा० नहीं रहता। स्वप्न में राजा भिखारी हो जाता है और भिखारी राजा हो जाता है पर जागने पर कहीं कुछ नहीं क्योंकि स्वप्न बिना सामग्री के बना है, ऐसे ही जागृत भी बिना सामग्री के बना है अतः काल्पनिक है इसलिये जा०-स्व० सब मिथ्या है सत्य तो आत्मा है जो जा०-स्व०-सु० को देखता है व तीनों काल में रहता है। आत्मा अपना स्वरूप है, दृश्य जगत जड़ है एवं असत् है जन्म तो इन शरीरों का होता है वह भी माया से। आत्मा अजन्मा है। अर्जुन मुझ अनंत अखण्ड सुख-सागर में माया रूपी पवन के निमित्त से अनंत कोटि ब्रह्माण्ड रूपी लहरें उत्पन्न हो जाती हैं और विलीन हो जाती हैं अतः दिखाई पड़ने वाली लहरें झूठी हैं जल ही सत्य होता है क्योंकि पकड़ने पर जल ही हाथ में आता है, लहरें-फेन-बुलबुले झूठे ही उठ रहे हैं केवल वाणी का विकार हैं // सभी भूत-प्राणी निश्चित ही आनंद सिन्धु से ही उत्पन्न होते हैं, आनंद से ही जीते हैं, आनंद सिन्धु में ही चलते-फिरते और लीन हो जाते हैं इसलिये ये आनंद सिन्धु से भिन्न नहीं हैं तथा उनसे क्षण मात्र के लिये भी अलग नहीं होती हैं। जल को रस व लहरों को रास कहते हैं। रास एक में बनता नहीं अनेक में ही बनता है अतः माया रूपी पवन के निमित्त से सच्चिदानंद सिन्धु से ये लहरों रूपी संसार उत्पन्न और विलीन होता रहता है // वेदान्त का सिद्धान्त तो यही कहता है कि **जीव-ईश्वर-जगत सब ब्रह्म ही है** - एक रस-सिन्धु ब्रह्म से रास-लहरों की भाँति ये जगत उत्पन्न और लय होता रहता है। कारण से कार्य कभी जुदा नहीं होता जैसे माटी से सब घट-मठ बनते हैं, माटी में रहते हैं और फूट कर माटी में ही लीन हो जायेंगे तो माटी से जुदा भये ही नहीं कभी अतः कारण से कार्य उत्पन्न होता है और कारण में ही लीन हो जाता है, कार्य में कारण व्याप्त होता है अर्थात् कारण का कार्य में अन्वय तथा कार्य का कारण में व्यतिरेक होता है। ऐसे ही सुवर्ण से बने नाम-रूप आभूषण सुवर्ण से अभिन्न हैं अतः सोने के समान भगवान हैं और ये नाम-रूप जीव-जन्तु मन-माया रूपी सुनार ने बना दिये हैं, भगवान रूपी सुवर्ण तो बना बनाया है। मन है तब तक ये संसार है। सुषुप्ति में मन नहीं रहता तो ये संसार भी नहीं रहता। हम मन को व मन के बनाये संसार को देखने वाले हैं और जब मन सुषुप्ति में लीन हो जाता है तब भी हम देखते हैं, हम अखण्ड ज्ञान स्वरूप हैं, हमारा जन्म-मरण नहीं होता और ये संसार जो मनरूपी सुनार ने गढ़ दिया है - तभी तक रहता है जब तक मन है, निद्रा और समाधि में मन नहीं रहता तो संसार भी नहीं रहता पर हम रहते हैं क्योंकि हमारा तुम्हारा जन्म-मरण नहीं होता - तो चिन्ता किस बात की है? ये शरीर तो मन रूपी सुनार बनाता-बिगाड़ता रहता है इसमें हमारी क्या हानि? क्या लाभ?
29	29 - Jul -13	41	* आत्मा का स्वरूप * * भ० गी० २/२०–२५ * भाग ६	**गीता २/२०** :: *'न जायते म्रियते वा कदाचित् ... हन्यमाने शरीरे '* भ०गी०२.२०, अर्जुन! **'देह और देही'** ये दो ही तत्त्व हैं, जो आँखों से दिखाई देता है वह देह है और जो इन देहों में बैठकर देख रहा है वह देही जीव मेरा ही अंश है उस जीवात्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म होता है। अर्जुन जीव का जन्म नहीं होता इसलिये जीव को **अज** कहते हैं अतः **नित्य** है यानि सदा रहता है, **शाश्वत्** है-सदा सदा से है, **सनातन** है माने कब से है पता नहीं, जिसका जन्म नहीं असकी उम्र क्या? जीव मेरा अंश है उसका न जन्म होता है न मृत्यु, शरीर का ही जन्म और मृत्यु होती है, जन्म भी मेरी माया से होता है बिना सामग्री के इसीलिये ये मिथ्या हैं जैसे स्वप्न। जैसे स्वप्न जा० में नहीं रहता वैसे ही जागृत स्व० में नहीं रहता इसलिये जागृत भी झूठा हो गया। जा० में राजा स्व० में भिखारी और भिखारी राजा हो जाता है पर जागो तो कहीं कुछ नहीं। भगवान शंकर कहते हैं कि ये संसार भी स्वप्न ही है क्योंकि जा० की चीज़ें स्व० में और स्व० की चीज़ें जा० में काम नहीं आतीं इस प्रकार जा०-स्व० दोनों ही झूठे हो गये। सुषुप्ति में जा०-स्व० दोनों नहीं रहते, समाप्त हो जाते हैं पर जा०-स्व०-सु० को जो देखने वाला है वह तो सदा रहता है और तीनों अवस्थाओं को देखता है पर जा०-स्व०-सु० तीनों न अपने को जानते हैं और न दूसरे को जानते हैं। तीनों शरीरों को ज्ञान नहीं है ये मकान के समान हैं - जैसे मकान मालिक तो मकान को जानता है पर मकान किसी को नहीं जानते न अपने को न दूसरे को। ये तीनों शरीर - जा० में स्थूल, स्व० में सूक्ष्म और सु० में कारण शरीर तो मकान के समान हैं पर हमारा तुम्हारा स्वरूप तो जीवात्मा है जो तीनों अवस्थाओं और शरीरों को जानता है और सदा रहता है। २४ घंटे की उम्र न जा० की है न स्व० और सु० की, २४ घंटे में इनों अवस्थायें बदल जाती हैं पर इन इतों को देखने वाला जीवात्मा हमारा तुम्हारा स्वरूप है। हम नहीं बदलते, हम दिन-रात, २४ घंटे, १२ महीनों वर्षों को देखते हैं सभी बदलते रहते हैं पर हम नहीं बदलते। कितने ही माह-वर्ष-युग-कल्प बीत गये, आगे भी आवेंगे परन्तु हमारा चेतन आत्मा एक समान प्रकाशमान रहता है, न उदय होता है न अस्त होता है आत्मा सबको एक समान रूप से देखता रहता है, भगवान कहते हैं कि ये जीवात्मा मेरा ही अंश है जीव रूप से सब शरीरों में विराजमान है सनातन है इसलिये मेरा ही स्वरूप है **२/२१** अर्जुन जो इस प्रकार से अपनी आत्मा को जानता है कहो वह कहो किसको मारेगा या मरवायेगा? क्योंकि द्रष्टा साक्षी आत्मा में कर्म नहीं है। **५/१३** ९ द्वार के पुर में पुरुष जीवात्मा सुख से रहता है - न कुछ करता है न कुछ करवाता है। करना-कराना कर्म है और आत्मा में कोई कर्म नहीं है अतः आत्मा अकर्म है **३/२७** जितने भी कर्म हैं सब प्रकृति में ही हैं, दे०इ०म०बु० सब प्रकृति के ही कार्य हैं इनमें ही कर्म हैं आत्मा इन सबको देखता है वह अकर्म है **३/२९** जो पुरुष सब कर्म प्रकृति में देखता है और स्वयं को अकर्म देखता है वही ज्ञानी है **२/२२** जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़ कर नये वस्त्र धारण करता है (पुरुष वही रहता है कपड़े बदलते रहते हैं) वैसे ही ये जीवात्मा इन पुराने शरीर-रूपी कपड़ों को छोड़ देता है और नये शरीर-रूपी कपड़े पहन लेता है यानि जीवात्मा वही रहता है कपड़े ही बदलते रहते हैं **२/२३** अर्जुन! आत्मा को अस्त्र-शस्त्रादि काट नहीं सकते क्योंकि आत्मा आकाश की भाँति निनि० है। आकाश की भाँति ही आत्मा को अग्नि जला नहीं सकती, न जल गला सकता है और न वायु सुखा सकता है क्योंकि हमारा आत्मा तो आकाश से भी अति सूक्ष्म है। आकाश की ही तरह हमारा आत्मा स्त्री-पुरुष सूर्य-चन्द्र अग्नि-वायु-जल आदि सबके साथ रहता है पर सबसे असंग ही रहता है **२/२४** आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य एवं नित्य-सदैव से, सर्वगत्-सर्वत्र व्यापक, स्थाणु-खम्बे की तरह ठोस, आकाशवत् अचल और सनातन है। ऐसा कौन सा देश-काल-वस्तु है जहाँ आत्मा नहीं है, व्यापक होने से आत्मा सर्वकाल-देश-वस्तुओं में रहता है **२/२५** आत्मा प्रकट नहीं है ये शरीर व संसार ही प्रकट है। आत्मा द्रष्टा-साक्षी मात्र है। सब शरीरों के भीतर निनि० छिपा बैठा है जो चित्त के चिन्तन में नहीं आता पर चिन्तन को देखता है। आत्मा अविकारी-षट्-विकार रहित, व्यापक और अविनाशी है अतः अपने को सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा जानो और आत्मा को ब्रह्म जानो
30	30 - Jul -13	34		**गीता २/२३ - २५** :: अर्जुन! ये जो हमारा-तुम्हारा स्वरूप चेतन आत्मा है ये आकाश के समान व्यापक और आकाश से भी सूक्ष्म है इसलिये आत्मा का आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी से सम्बन्ध नहीं होता है अतः माया के कार्य अस्त्र-शस्त्र आत्मा का छेदन नहीं कर सकते हैं। आत्मा निनि० है व आकाश के समान पंचतत्त्वों में भी व्यापक है। आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी आत्मा को छू भी नहीं सकते अतः आत्मा को कोई किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचा सकता वैसे ही जैसे आकाश को वायु सुखा नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता और जल गीला नहीं कर सकता क्योंकि इनका आत्मा से सम्बन्ध ही नहीं होता। आकाश-वायु-अग्नि-	

			* आत्मा का स्वरूप * * भ० गी० २/२३–२५ * भाग ७	जल-पृथ्वी ये सब माया के कार्य हैं इन पंचभूतों से सारा संसार बना है। माया की उत्पत्ति आत्मा से होती है पर आत्मा की उत्पत्ति नहीं होती। परमात्मा अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश→वायु→अग्नि→जल→पृथ्वी→औषधियाँ→अन्न→पुरुष (संसार) उत्पन्न हुआ है। अर्जुन! सब प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न से जीते हैं और फिर अन्न/पृथ्वी में ही लीन हो जाते हैं। महा प्रलय में पृथ्वी १० गुना बड़े जल में→जल १० गुना बड़े अग्नि में→अग्नि १० गुना बड़े वायु में→वायु १०० गुना बड़े आकाश में और आकाश, आकाश से भी अनंत गुना बड़ा आत्मा में लीन हो जाता है, आत्मा का तो जन्म हुआ नहीं तो वह किसमें लीन होगा? आत्मा-परमात्मा तो एक ही है, आत्मा की उत्पत्ति नहीं है इसलिये आत्मा का नाश नहीं होता। आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी तो माया का कार्य हैं इसलिये सत्य नहीं हैं। आत्मा सत्य है इसका कोई बना-बिगाड़ नहीं सकता। दे०ह०म०बु०प्रा० पंचभूत से बने हैं इसलिये माया के कार्य हैं, सत्य नहीं हैं व जड़ हैं। आत्मा सत्-चेतन है इसका कोई नाश नहीं कर सकता क्योंकि जिसका जन्म ही नहीं हुआ उसे काल नहीं मार सकता। माया का कार्य असत्-जड़-दुःखरूप है, माया बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड की रचना क्षण मात्र में कर देती है। माया शक्ति जड़ है जीव का स्वरूप चेतन है, माया चेतन को छू भी नहीं सकती तो ये जड़-माया के कार्य काम क्रोध अग्नि वायु आदि तुम्हें पकड़ कैसे सकते हैं? जीव ही माया और काम क्रोध अग्नि वायु आदि को पकड़ते हैं और दुःखी होते हैं अतः हे जीव! इन्हें छोड़ दो और स्वयं सुखी हो जाओ। चेतन ही जड़ को पकड़ते हैं और दुःख पाते हैं क्योंकि जड़ तो पकड़ते नहीं। आत्मा में देखना-सुनना-चलना-फिरना आदि कोई कर्म नहीं हैं, सभी कर्म (इन्द्रियों) प्रकृति में हैं। माया/पंचभूतों का ही परिवार सारा संसार है ये जड़ है अतः किसी को पकड़ नहीं सकता, चेतन जीव ही इन्हें पकड़ता है और दुःख पाता है। आत्मा चेतन-स्वतंत्र है और माया जड़-परतंत्र है अतः इन्हें स्वयं छोड़ कर सुखी हो जाओ। हमारा-तुम्हारा आत्मा सच्चिदानंद ब्रह्म का स्वरूप है इसलिये आत्मा का माया और माया का परिवार कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकता हम तो स्वभाव से ही छूटे हुए हैं। ईश्वर का अंश होने से जीव भी चेतन अमल अविनाशी व स्वभाव से ही सुखराशि है। माया जड़ होने से हमें पकड़ नहीं सकती। आत्मा में अज्ञानता और दुःख नहीं है, आत्मा स्वभाव से ही सच्चिदानंद स्वरूप है केवल जानने की जरूरत है अतः भगवान हमें अपनी आत्मा को जना ही रहे हैं कि तुम सत्-चित्-आनंद स्वरूप आत्मा मेरे ही अंश हो। सब जीव मेरे ही अंश हैं व सदा सदा से हैं, सनातन हैं इनका कभी जन्म-मरण नहीं हुआ ।।	
31	31 - Jul -13	46	* माया का स्वरूप * * भाग ८	*'न जायते म्रियते वा कदाचित् ... हन्यमसने शरीरे '* अर्जुन! हमारा तुम्हारा जो आत्म तत्त्व है उसका जन्म नहीं होता इसीलिये मृत्यु नहीं होती क्योंकि मृत्यु उसी को मारता है जिसका जन्म होता है। शरीरों का ही जन्म होता है व मृत्यु होती है क्योंकि आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु उसे मार नहीं सकता अतः आत्मा मृत्यु से छूटा हुआ ही है। शरीरों का जन्म मेरी माया से क्षण मात्र में हो जाता है बिना सामग्री के, मेरी माया एक क्षण में सारा संसार बना देती है। जो दिखाई पड़ रहा है ये माया का खेल है। भगवान की माया के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, माया न घटने वाले को भी घटा के दिखा देती है, क्षण मात्र में अनंत कोटि ब्रह्माण्डों की रचना कर देती है। दृ०→ भगवान राम का कौशल्या माँ को, भगवान कृष्ण का यशोदा माँ को तथा कुरुक्षेत्र में भगवान कृष्ण का अर्जुन को विराटरूप दर्शन ।। इस प्रकार भगवान द्वारा अपनी महामाया शक्ति से अर्जुन को अपने विराटरूप में सारे विश्व की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय दिखाने पर अर्जुन अत्यन्त भयभीत हो गया तो भगवान ने उसे अपना चतुर्भुज रूप दिखाया किन्तु इस पर भी शान्ति न मिलने पर भगवान ने पुनः अपना द्विभुज रूप धारण कर अर्जुन को सान्त्वना दी। अपनी महामाया शक्ति से भगवान सारे विश्व का रूप धारण कर लेते है। भगवान राम जगदीश्वर हैं व सम्पूर्ण माया के पति हैं। सीता महामाया शक्ति हैं, वे ही संसार की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करती हैं। सत् को छिपा कर असत् को सत् करके दिखा देना ही माया है। देवताओं, असुरों व योगियों के पास भी यत्किंचित् माया होती है। भ०राम व भ०कृष्ण तो मायापति हैं ये सारे संसार को क्षणमात्र में बना दें तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है। भ०कृष्ण कहते हैं कि मेरी योग माया से सारा संसार बन जाता है। इन सबके भीतर मैं छिपा बैठा रहता हूँ और सबको देखता हूँ इसलिये लोग मुझको नहीं देख पाते हैं और जो मेरी भक्ति करते हैं उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर मैं अपनी माया का पर्दा हटा देता हूँ तब मेरे सत्-चित्-आनंद स्वरूप को ये लोग देख पाते हैं जो मैं सबकी आत्मा हूँ। सब शरीरों में मैं ही बैठा हूँ सच्चिदानंद द्रष्टा के रूप में और ये सब शरीर मेरी माया से बने हैं मुझ ईश्वर के शरीर भी और जीवों के शरीर भी। मुझे ही जीवात्मा कहते हैं। अर्जुन हमारे तुम्हारे शरीरों के भीतर जो देखने वाला है वह जीवात्मा के रूप में साक्षात् भगवान ही हैं और हमारे तुम्हारे शरीर भगवान की माया से क्षणमात्र में बन जाते हैं इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये ।।
32	32 - Jul -13	38	* आत्मा–अनात्मा ब्रह्म–माया विवेक * भाग ९	**गीता २/२०-२५.** :: भगवान ने कहा अर्जुन! दो चीज़ हैं - **देह** और **देही**, शरीर और शरीरी, **आत्मा** और **अनात्मा**, तीसरी चीज़ कुछ नहीं है। जो देहादि दृश्य हैं ये सब अनात्मा हैं, ये अपना स्वरूप नहीं हैं और जो सब शरीरों में बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है वह आत्मा है, वही हमारा स्वरूप है अतः अपने को आत्मा जानना चाहिये देह नहीं जानना चाहिये, यही ज्ञान का लक्षण है कि मैं देह नहीं हूँ क्योंकि देह दृश्य-जड़-अनात्मा है और मैं देह में रहने वाला देह को देखने वाला देही आत्मा हूँ। जो देही आत्मा है वह नित्य है अवध्य है उसका जन्म-मरण होता ही नहीं है, उसमें लेशमात्र भी दुःख नहीं है अज्ञानता नहीं है। आत्मा चित्त के चिन्तन को भी देखता है व अव्यक्त है क्योंकि निनि० है। शरीर ही दिखाई पड़ते हैं, आत्मा सबको देखता है। वह षट्-विकार रहित है, न आत्मा का जन्म होता है और न मरण होता है तो जन्म-मरण का दुःख भी कैसे आयेगा। **अपनी आत्मा को जानना ही कर्तव्य है कि मैं सत्-चित्-आनंद आत्मा हूँ।** क्योंकि आत्मा में दुःख है ही नहीं तो दुःख की निवृत्ति क्या बताऊँ? आत्मा स्वभाव से ही नित्य सुख-स्वरूप है इसलिये सुख-स्वरूप आनंद की प्राप्ति करनी नहीं, अमरता अपना स्वरूप है तो अमरता को प्राप्त नहीं करना। मैं सत् इसलिये हूँ क्योंकि मेरा जन्म-मरण नहीं होता है, मैं सदा रहता हूँ, मैं चित् इसलिये हूँ क्योंकि मेरा जो ज्ञान-चेतन है वह अखण्ड है सदा एक समान रहता है और आनंद इसलिये हूँ क्योंकि आदि-अन्त रहित आनंद का सिन्धु हूँ। आत्मा में दुःख का लेश भी नहीं है, **'सत्-चित्-आनंद' आत्मा का स्वरूप है** इसलिये सच्चिदानंद की प्राप्ति नहीं करनी है। मृत्यु अज्ञान और दुःख आत्मा में है ही नहीं, सारे विकार शरीरों में हैं। एक शरीर के ज्ञान से सारे संसार का ज्ञान कर लेना चाहिये। जन्म-मरण भी माया से ही होते है। माया क्षण भर में अनंत कोटि ब्रह्माण्ड बना देती है और मिटा देती है पर इस माया को देखने वाला हमारा आत्मा माया से अलग ही रहता है। ये जगत एक प्रकार की जादूगरी है और ईश्वर जादूगर है, ईश्वर से भी ऊपर द्रष्टा-साक्षी ब्रह्म आत्मा है - वही हमारा स्वरूप है द्रष्टा-साक्षी मात्र । दे०ह०म०बु०प्रा० में ही सब कर्म हैं उसमें ही सब खेल हो रहा है। हम इन सबसे अलग हैं। जा०-स्व०-सु० बस इतनी ही कार्य-कारण माया है, सुषुप्ति **'कारण-माया'** और जा०-स्व० **'कार्य-माया'** है। जिससे संसार उत्पन्न हो उसे 'कारण' तथा जो उत्पन्न हो उसे 'कार्य' माया कहते हैं। जा०-स्व०-सु० तीनों के हम द्रष्टा मात्र हैं। कार्य-कारण माया को हम देखने वाले ४थे 'तुरीय' है, इन तीन जा०-स्व०-सु० में हम कभी मिलते नहीं हैं, समाधि में सुषुप्ति भी नहीं रहती, इसमें तीनों का अभाव है। सत्-चित्-आनंद अपना स्वरूप है और असत्-जड़-दुःखरूप माया का स्वरूप है। मनुष्य पशु-पक्षी सूर्य-चन्द्र आदि सब माया का स्वरूप है इनसे हम विलग ही रहते हैं। जा०-स्व० को प्रकाशने वाला ब्रह्म है, वह ब्रह्म ही मैं हूँ - जो ऐसा जानता है वह सब बन्धनों से मुक्त ही है। माया ब्रह्म को नहीं छूती इसलिये उसका कुछ बिगाड़ भी नहीं सकती जैसे आकाश को बादल और वर्षा नहीं छू पाते यानि आकाश को वर्षा से न हानि है न लाभ। हमारा आत्मा आकाश से भी इतना सूक्ष्म है कि उसमें भी व्याप्त है और इतना महान है कि आकाश से भी अनंत गुना बड़ा है। आत्मा से ही आकाश की उत्पत्ति लिखी है पर आत्मा तो उत्पन्न ही नहीं होता। जब आत्मा की उत्पत्ति ही नहीं होती तो मृत्यु भी क्या होगी? आत्मा के नाश करने में संसार में कोई भी समर्थ नहीं है। आत्मा न स्त्री-पुरुष है, न नपुंसक है पर मनुष्य पशु-पक्षी सूर्य-चन्द्र देवी-देवता आदि सब नाम-रूपों में है। नाम-रूप को देखने वाला हमारा चेतन आत्मा है। ये नाम-रूप देवालय हैं (*देहो देवालय प्रोक्ता ... सोहम् भावेन पूजयेत्*) - ये जितने भी देह हैं सब मन्दिर हैं, कुछ ईश्वर के (राम, कृष्ण आदि) और कुछ जीव के (स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि) और जो देव है वह सबके हृदय-रूपी सिंहासन पर बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है। सभी शरीर-रूपी मन्दिरों में साक्षात् परम् ब्रह्म परमात्मा ही जीवात्मा के रूप में बैठकर देख रहा है अतः **'मैं शरीर हूँ, मन्दिर हूँ'** - इस **अज्ञान** देह-दृष्टि का त्याग करो तथा **'मैं देह में बैठा देव-जीवात्मा हूँ'** यह देव-दृष्टि करो - यही यथार्थ ज्ञान है, देव तो अनाम-अरूप-अवाँगमनसगोचर है। अपने देखने में कि **'मैं देखता हूँ'** ये संशय रहित ज्ञान सबको है, वह देखने वाला परमात्मा ही है। ये शरीर भगवान ने अपनी माया से बनाये हैं और भगवान स्वयं ही सबमें बैठकर देख रहे हैं ।।

33	33 - Jul -13	34	* द्रष्टा—दृश्य ब्रह्म—माया विवेक * भाग १०	गीता २/२०-२५ :: भगवान ने कहा अर्जुन! दो वस्तुऐं हैं - **देह** और **देही**, **द्रष्टा** और **दृश्य**, **आत्मा** और **अनात्मा**, तीसरी कुछ नहीं है। अर्जुन हमारा स्वरूप आत्मा है, ये शरीर अनात्मा है। शरीर देह है व हम देह को देखने वाले देही हैं। जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़ों को त्याग कर नये कपड़े पहन लेता है उसी प्रकार ये शरीर कपड़े के समान है जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर धारण कर लेता है। जीवात्मा की मृत्यु नहीं होती, क्योंकि उसका जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती। आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता व जल गीला नहीं कर सकता क्योंकि ये आत्मा को छू भी नहीं सकते। आत्मा आकाश से भी सूक्ष्म है यानि सूक्ष्म से भी इतना सूक्ष्म है कि आकाश में भी प्रविष्ट है और महान से इतना महान है कि आकाश से भी अनंत गुना बड़ा है। जब आकाश को ही अस्त्र-शस्त्र काट नहीं पाते, अग्नि जला नहीं पाता व जल गला नहीं कर पाता तो आत्मा को ये किस प्रकार काट-जला या गला पायेंगे ? मायारूपी मेघ की ये 'स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत' आदि वर्षा की बूँदें हैं। इस माया मेघ की बरसात से चेतन रूपी आकाश की न कोई हानि होती है और न लाभ। चेतन आकाश को ये बरसात छू भी नहीं पाते। इस प्रकार आत्मा का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है। आत्मा चेतन-पुरुष द्रष्टा-साक्षी और असंग है। ये देखने वाला देव ही हमारा आत्मा है और देह मन्दिर हैं। माया ने छोटे-बड़े मन्दिर ही बना दिये हैं व भगवान स्वयं ही इनके भीतर बैठकर देख रहे हैं। सभी देहों में जीवात्मा के रूप में सच्चिदानंदघन परमात्मा ही है दूसरा कोई नहीं है। देह **देवालय** हैं ये मन्दिर तो देखते नहीं किसी को तो हमारा-तुम्हारा स्वरूप **देव** है क्योंकि हम देखते हैं। हम देह को छूते नहीं हैं अलग रहते हैं, द्रष्टा सबसे अलग ही रहता है, असंग रहता है दृश्य से । हम चेतन पुरुष हैं, सत्य-ज्ञान-आनंद से जो पूर्ण है उसे पुरुष कहते हैं - हमारा आत्मा सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण है। **'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'** - आत्मा सत्य-ज्ञान-आनंद और अनंत है, उसी को ब्रह्म कहते हैं, 'तत्वमसि' - वेद कहता है वही हमारा स्वरूप है। हे जीव! वह ब्रह्म ही तू है, तुझमें और ब्रह्म में भेद नहीं है इस अभेद दर्शन को ही ज्ञान कहा जाता है। इस प्रकार भगवान ने आत्मा को इस देह से अलग बताया है। आत्मा अजन्मा है अमर है इसलिये अर्जुन तुम्हें क्या चिन्ता है, तुम्हारा जन्म-मरण होता ही नहीं है और रहा ये देह, तो ... **२/२६** ये देह जन्मता है पुनः मरता है क्योंकि जन्मने वाले का मरना ध्रुव है परन्तु ये हमारा तुम्हारा स्वरूप नहीं है तो इसमें हमारी क्या हानि होती है? इसलिये निश्चिन्त रहो। ये शरीर मेरी माया से बनते हैं और पुनः बिगड़ते हैं। जा०-स्व०-सु० का संसार है, जा० का स्थूल श०, स्वप्न के सूक्ष्म श० सुषुप्ति में सब लीन हो जाते हैं और फिर सुषुप्ति से उत्पन्न होते हैं इसलिये कार्य-कारण रूप माया है। जा०-स्व०-सु० ये तीनों माया हैं और हम ४थे हैं, जा०-स्व०-सु० को जो देखता है वह ४था होता है, ४थे को ब्रह्म कहते हैं वह हमारा तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म है। जा०-स्व०-सु० बस इतनी ही माया है। जा०-स्व०-सु० को जो प्रकाशता है वह ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ - ऐसा जो जानता है वह सभी बन्धनों (जन्म-मरण का दुःख ही बन्धन है) से छूट जाता है। इसलिये अपने को स्थूल श०, सूक्ष्म श० या कारण श० मत मानो, अपने को जीवात्मा जानो। जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है, सदा-सदा से है, इसका जन्म नहीं होता और मेरा अंश मेरा ही स्वरूप होता है इसलिये स्वयं को मेरा ही स्वरूप मानो। ईश्वर का अंश होने से जीव भी अविनाशी है उसका जन्म-मरण नही होता। ईश्वर चेतन है तो जीव भी चेतन है यानि ज्ञान स्वरूप है तथा ईश्वर निर्मल और सहज ही सुखराशि है तो जीवात्मा भी निर्मल और सुखराशि है। अंश-अंशी में भेद नहीं होता। इस प्रकार भगवान ने हमको-आपको इन शरीरों से जुदा बताया है। शरीर मन्दिर हैं और ये मेरी माया से बनते-बिगड़ते रहते हैं और मैं स्वयं ही जीवात्मा के रूप में सबकी आँखों से देख रहा हूँ इसलिये जीवात्मा मेरा स्वरूप है, तो मैं हूँ और मेरी माया है, मैं द्रष्टा ब्रह्म हूँ और दृश्य माया है तीसरा कोई नहीं है सर्व वेदान्तों का यही निर्णय है - *'दृग्ब्रह्म दृश्य मायेति ... सर्व वेदान्त निर्णय'।* भगवान ब्रह्म हैं और देहादि भगवान की माया हैं तीसरा कोई नहीं है इसलिये स्त्री-पुरुष-नपुन्सक हमारा तुम्हारा स्वरूप नहीं है, ये तो शरीरों का स्वरूप है, हम तो शरीरों के भीतर बैठे हुए भगवान के अंश जीवात्मा हैं और उन्हीं का स्वरूप हैं अतः अपने को द्रष्टा-साक्षी चेतन मानो व देहादि में अहंकार मत करो। स्त्री-पुरुष शरीरों के नाम हैं जीवात्मा के नहीं, जीवात्मा तो सब शरीरों में बैठा हुआ सबकी आँखों से देख रहा है ।।	
34	34 - Jul -13	40	* ब्रह्म और माया * भाग ११	गीता २/२०-२२ + ३० :: ब्रह्म अर्जुन! देह और देही २ ही तत्त्व हैं, देह अनित्य है और देह में रहने व देखने वाला जो देही है वह नित्य एवं आकाश के समान व्यापक और असंग है। आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, वायु सुखा नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता व जल गीला नहीं कर सकता क्योंकि आत्मा आकाश के समान अति सूक्ष्म एवं आकाश में भी प्रविष्ट है। आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म होता है। आत्मा अव्यक्त है, व्यक्त तो शरीर हैं। आत्मा सब शरीरों में बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है। आत्मा सबमें है पर सबसे अलग है, उसे आकाश की तरह कोई छू भी नहीं पाता। अर्जुन! जैसे आकाश में बादल आते हैं वर्षा करते हैं पर आकाश को छूते नहीं हैं ऐसे ही माया रूपी मेघ की ये स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि बरसात की बूँदें हैं। मेघ एक है और बूँदें अनेक हैं इसलिये आत्मा रूपी चिदाकाश में माया रूपी मेघ की स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत रूपी बरसात की बूँदों से आत्मा की क्या हानि क्या लाभ? माया रूपी मेघ आते हैं और वर्षा करके चले जाते हैं पर आदि में, मध्य में और अन्त में चेतन रूपी आकाश ज्यों का त्यों ही रहता है - ऐसा हमारा तुम्हारा आत्मा का स्वरूप है। आत्मा में मृत्यु और दुःख है ही नहीं, तो निवृत्ति किसकी करूँ? सुख आत्मा का स्वरूप है, तो प्राप्ति किसकी करूँ? अर्जुन! हमारी तुम्हारी **आत्मा का स्वरूप सच्चिदानंद है**, ये आत्मा तो साक्षात् मेरा ही रूप है, ये जीव मेरा ही अंश है व सनातन है। ये शरीर मेरी छाया रूप माया से बनते बिगड़ते रहते हैं वैसे ही जैसे पुरुष सत्य होता है व उसकी छाया झूठी होती है, वह पुरुष से उत्पन्न होती है पुरुष के आश्रित रहती है और पुरुष में ही समा जाती है। झूठ की निवृत्ति सत्य में ही होती है। जो सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हो उसे पुरुष कहते हैं। *आत्मा सदा रहता है इसलिये* **सत्** *है, आत्मा अखण्ड ज्ञान स्वरूप है इसलिये उसे* **चित्** *कहते हैं और आत्मा शान्त महासागर के समान आदि-अंत रहित* **आनंद** *का सिन्धु है अतः आत्मा का स्वरूप* **सच्चिदानंद** *है* माया जा०-स्व०-सु० इतनी ही माया है, ये आती-जाती रहती है। हमारा तुम्हारा स्वरूप चेतन है जो तीनों को देखता है व सदा रहता है। जा०-स्व०-सु० तीनों को जो प्रकाशता है वह ब्रह्म है व जो आती-जाती रहती है उसे माया कहते हैं। २४ घंटे में जा०-स्व०-सु० तीनों बदल जाती हैं पर हम सदा रहते हैं। २४ घंटे की उम्र न निद्रा की है, न स्वप्न की है और न जागृत की। आत्मा तो आता-जाता है नहीं, हम तीनों में रहते हैं व तीनों को देखते हैं, हम सब-दिन सब-महीनों व सब-वर्षों में रहते हैं। अर्जुन! कितने ही दिन-रात, मास, वर्ष, युग बीत गये और आगे भी आवेंगे पर हमारा अखण्ड ज्ञान सदा एक समान प्रकाशमान रहता है। आत्मा सदा रहता है कभी बदलता ही नहीं है इसलिये अर्जुन! अपनी आत्मा को सच्चिदानंद ब्रह्म जानो बाकी जितना दृश्य है ये छाया के समान माया है फिर ये माया पुरुष की छाया के समान ही मुझसे प्रकट होती है, मेरे आश्रित रहती है फिर मुझमें ही समा जाती है क्योंकि झूठी चीज़ सत्य में ही समाती है वह सत्य से अलग रह ही नहीं सकती ((सीता और राम का स्वरूप निरूपण - संक्षेप में)) राम परम प्रकाशरूप उदय-अस्त रहित ज्ञान के सूर्य हैं। राम सबके हृदय में बैठ करके सबमें रमें हुए हैं, वही द्रष्टा-साक्षी हैं। सीताजी जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करती हैं और फिर जैसे छाया पुरुष में समा जाती है ऐसे ही सीताजी राम में समा जाती हैं फिर एक अद्वितीय सच्चिदानंद ही रह जाते हैं। अतः जब भी संसार की उत्पत्ति होती है तो पहले माया उत्पन्न होती है और माया ही जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करती है, इसी को सीता, माया या प्रकृति कहते हैं, यही जगत जननी हैं। राम तो सच्चिदानंद ब्रह्म हैं और उन्हीं का अंश ये जीव है इसलिये जीव राम का स्वरूप है ।।	
35	35 - Jul -13	28		भगवान राम का वन गमन प्रसंग :: जिस प्रकार छाया पुरुष के बिना नहीं रह सकती उसी प्रकार सीता भी राम के बिना रह नहीं सकतीं। वन गमन के समय सीता ने राम को यही बताया कि आपके बिना मैं नहीं रह सकती क्योंकि आप पुरुष हैं और मैं छाया हूँ। छाया की उत्पत्ति पुरुष से होती है, पुरुष के आश्रित रहती है और पुरुष में ही समा जाती है फिर एक अकेला पुरुष ही रह जाता है। पुरुष का अर्थ होता है **'पूर्णत्वात् पुरुषः'** यानि जो सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हो उसे **पुरुष** कहते हैं। राम सच्चिदानंद स्वरूप और उदय-अस्त रहित ज्ञान के सूर्य हैं इसलिये राम ब्रह्म हैं। सीता माया है माने राम की छाया है। जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार सीताजी करती हैं। राम तो ब्रह्म हैं उनमें कोई कर्म नहीं है राम द्रष्टा-साक्षी मात्र हैं परन्तु इस समय भगवान राम मनुष्यों को शिक्षा देने के लिये मनुष्य अवतार लेकर नर लीला कर रहे हैं। पुत्रों को शिक्षा देने के लिये पुत्र बने, मित्रों को शिक्षा देने के लिये मित्र बने, विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये वे गुरुकुल में पढ़ने गये - भगवान राम ये सब शिक्षा देने के लिये ही कर रहे हैं पर वास्तव में तो वे जगत पिता हैं। यदि पुत्रों, मित्रों व विद्यार्थियों को शिक्षा देना है तो पुत्र-मित्र-विद्यार्थी बनना ही पड़ेगा वरना वेद जिनकी सहज स्वाँस ही हैं उन्हें विद्याध्ययन की क्या आवश्यकता? शिक्षा देने के लिये वैसा ही वेश बनाना पड़ता है जैसा अभिनय हो। भगवान राम जब वन गये तो सर्वप्रथम चित्रकूट में निवास किया और निशाचरों का नाश किया। जब-जब धर्म की हानि होती है, अधर्म बढ़ जाता है, साधु-ब्राह्मण दुःख पाते हैं और दुष्ट लोग दुःख देते हैं तब भगवान का अवतार होता	

				है - वन-गमन का मुख्य उद्देश्य यही था। इस समय भी भगवान का अवतार दुष्टों का दलन करने के लिये, साधु-ब्राह्मण एवं गउओं की रक्षा करने के लिये हुआ है इसलिये लीला करने के लिय भगवान का वन-गमन अनिवार्य था // **पंचवटी में सूर्पनखा सम्वाद - कथा** //	
36	36 - Jul -13	43	* ब्रह्म और माया * भाग १२	**गीता** भगवान श्रीकृष्ण जगत गुरु हैं क्योंकि वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर के अवतार हैं। गीता में भगवान ने कहा है जगत का माता-पिता-धाता और पितामह मैं हूँ - *'पिता हमस्य जगतो ... ऋक्साम यजुरेव च'* भगवान सबके शासक भी हैं, भगवान के भय से अग्नि तपता है, सूर्य समय से उदय-अस्त होता है, इन्द्र वरुण यम अपना-अपना कार्य दौड़-दौड़ कर करते हैं। अर्जुन और कृष्ण नर-नारायण के अवतार हैं। भगवत् गीता नर-नारायण का सम्वाद है। *'कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः ... मां त्वां प्रपन्नम्'* अर्जुन की भगवान के चरणों में प्रपत्ति और शरणागति के उपरान्त श्रीभगवानुवाच :- **२/२३-२५** अर्जुन! मुझ ईश्वर और तुझ जीव का वास्तविक स्वरूप क्रमशः ब्रह्म और आत्मा है, दोनों का एकत्व है यानि ब्रह्म आत्मा है आत्मा ब्रह्म है। आत्मा का जन्म-मरण नहीं होता, आत्मा को अग्नि जला नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकता, जल गीला नहीं कर सकता व अस्त्र-शस्त्र काट नहीं सकते क्योंकि आत्मा आकाश के समान अति सूक्ष्म और व्यापक है, आत्मा को कोई स्पर्श नहीं कर सकता इसलिये उसे मारने में कोई समर्थ नहीं है। आत्मा नित्य, सर्वगत्, अचल, स्थाणु और सनातन है। आत्मा द्रष्टा-साक्षी निनि० अव्यक्त व अचिन्त्य है यानि चित्त के चिन्तन को आत्मा जानता है पर चित्त उसे नहीं जानता। आत्मा में कोई विकार नहीं है। आत्मा में जन्म नहीं है तो मृत्यु भी उसे मार नहीं सकता। आत्मा अजन्मा और अव्यक्त है, व्यक्त तो ये शरीर हैं। **अर्जुन (नर) के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण (नारायण) ने सभी जीवों के कल्याण - जन्म-मरण से मुक्ति के लिये गीता का उपदेश किया है।** अर्जुन! अज्ञानता से तुम अपने को शरीर मानते हो अतः तुम इस अज्ञानता का त्याग करो क्योंकि तुम शरीर नहीं अपितु शरीर के भीतर रहने वाले जीवात्मा हो और जीवात्मा परमात्मा का स्वरूप है जिसका जन्म-मरण होता ही नहीं है इसलिये चिन्ता की कोई बात नहीं है, जन्म-मरण तो शरीरों का होता है। अपना आत्मा स्वभाव से ही जन्म-मरण से छूटे हुए हो, केवल ये जानना ही कर्तव्य था करना कुछ नहीं है। कर्म तो दे०इ०म०बु०प्राणों में है और ये सब मेरी माया से बनते हैं, तो जितने भी कर्म हैं वो प्रकृति में हैं आत्मा में कर्म नहीं हैं आत्मा केवल द्रष्टा-साक्षी मात्र है, इस प्रकार से अपनी आत्मा को जान करके अर्जुन तुमको शोक करना उचित नहीं है **२/२६** अर्जुन! मेरे मत से तो आत्मा का जन्म-मरण होता ही नहीं है परन्तु यदि तुम आत्मा का नित्य जन्म व नित्य मरण भी मानो तो भी हे महाबाहो अर्जुन तुमको शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि - **२/२७** जिसका जन्म है उसकी मृत्यु अटल है इसलिये इसमें कोई उपाय नहीं है कि इन शरीरों की मृत्यु रोकी जा सके। शरीरों का ही जन्म-मरण होता है आत्मा का जन्म-मरण होता ही नहीं इसलिये शोक नहीं करना चाहिये। शरीरों की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय मेरी माया से होती है बिना सामग्री के, इसलिये जगत मिथ्या है। जैसे जागृत में स्वप्न नहीं रहता, स्वप्न में जागृत नहीं रहता और सुषुप्ति में दोनों नहीं रहते अतः जा०-स्व० दोनों झूठे हो गये इसलिये इस मिथ्या संसार की प्रतीति मात्र है, पर देखने वाले आत्मा-द्रष्टा तो हम तुम ही हैं अर्जुन, ये जा०-स्व० तो जड़ दृश्य है जो स्वप्न के समान आते-जाते रहते हैं पर हम द्रष्टा तो एक जैसे ही रहते हैं अतः तुम द्रष्टा-साक्षी होकर खेल समझ कर इस जगत को आता-जाता देखो **२/२८** जन्म से पहले ये शरीर प्रकट नहीं थे, ये बीच में ये प्रकट हुए हैं और निधन के बाद भी ये नहीं दिखाई पड़ते इसलिये ये झूठे हैं क्योंकि जो आदि और अन्त में नहीं होते वे मध्य (वर्तमान) में भी नहीं होते अतः ये निश्चय ही झूठे हैं, माया ही है। हमारा आत्मा आदि-मध्य-अंत तीनों काल में रहता है अतः सत्य है तो इसमें दुःख की क्या बात है? **२/२९** इस आत्म तत्त्व को हज़ारों में कोई एक भाग्यशाली ही जान पाता हैं और वे अपनी आत्मा को आश्चर्य रूप से देखता हैं, *सच्चिदानंद आत्मा के अधिष्ठान-पने में ही माया से ये जगत दिखाई पड़ रहा है,* ये माया **आश्चर्य** है, चमत्कार है, खेल है, जादू है। आत्मा के अधिष्ठान-पने में ये माया खेल दिखाकर आत्मा में ही छिप जाती है। *हज़ारों में कोई एक भाग्यशाली जो इसे जान पाता है,* ये एक **आश्चर्य** है। फिर इस तत्त्व को जानकर वह दूसरों को बताता है, *जानने के बाद दूसरों को बताना भी* **आश्चर्यवत्** है, **आश्चर्यवत्** वह भी है *जो इस तत्त्व को सुनता है* क्योंकि कोई एक बिरला चतुष्ट्य-साधन सम्पन्न अधिकारी पुरुष ही इस तत्त्व को सुन सकता है और जो चतुष्ट्य-साधन सम्पन्न नहीं है वह इसे सुन कर भी समझ नहीं पाता, ऐसा आत्म तत्त्व बड़ा दुर्लभ है, बहुत जन्मों के पुण्य प्रारब्ध से ये आत्म तत्त्व सुनने को मिलता है **२/२९** **'देह और देही'** संसार में दो ही वस्तुऐं हैं तीसरा कुछ है ही नहीं। *जो देखता है, देह में रहता है उसे देही कहते हैं और जो दिखाई पड़ता है उसे देह कहते हैं।* ***देही नित्य और अवध्य है,*** *सबके देहों में जो आत्मा है* ***वह आत्मा एक अद्वितीय मैं ही हूँ।*** *ये सारे देह मेरी माया से बनते हैं और मिट जाते हैं। आत्मा मेरा ही स्वरूप है अतः अपने को तुम मेरा ही स्वरूप जानो। सभी जीव मेरे ही अंश हैं व सनातन हैं।* ***सब देहों में बैठकर देखने वाला द्रष्टा मैं ही हूँ।।***	
37	37 - Jul -13	45	* संसार एक पीपल (अश्वथ) वृक्ष *	**गीता अ० १५/१ ::** अर्जुन! ये संसार एक पीपल का वृक्ष है और इस संसार वृक्ष का अविनाशी बीज मैं हूँ। मुझसे ही ये संसार उत्पन्न होता है। सबसे पहले आदि पुरुष परमेश्वर-रूप मूल वाले और ब्रह्मा-रूप मुख्य शाखा वाले पीपल के वृक्ष से ऋषि-मुनि स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्र आदि शाखाऐं व उपशाखाऐं उत्पन्न हो गयीं → वेद और वेद में बताये गये धर्म-कर्म रूपी पत्ते → शुभाशुभ कर्मरूपी फूल → सुख-दुःख रूपी फल लग गये और इस प्रकार से अश्वथ यानि पीपल का वृक्ष तैयार हो गया। अतः जिस प्रकार पीपल वृक्ष की शाखा डाली पत्ते फूल व फल सब पीपल ही है उसी प्रकार इस संसार रूपी अश्वथ वृक्ष के, जिसका बीज मैं हूँ, शाखा-पत्ते-फल-फूलरूपी स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र आदि मुझसे अभिन्न हैं अतः ये सब मेरा ही **'विश्व-विराट'** रूप हैं **अध्याय ११ में अर्जुन को भगवान के विश्व-विराटरूप दर्शन का वर्णन** अर्जुन! संसार का जो सनातन बीज है वह तू मुझे ही जान। इसलिये ब्राह्मण लोग वेद मंत्रों द्वारा भगवान के विश्व-विराट रूप की स्तुति करते हैं कि सहस्त्र मूर्तियों के रूप में आप ही तो हो। भगवान में ही संसार उत्पन्न होता है, भगवान में ही रहता है और भगवान में ही लय हो जाता है। हमारे तुम्हारे शरीर भी भगवान से अलग नहीं हैं, सब भगवान के विश्व-विराट रूप में जुड़े हुए हैं अतः सब में भगवान का दर्शन और नमस्कार करना चाहिये। **वेदान्त सिद्धान्त यही कहता है कि ईश्वर, जीव व सम्पूर्ण जगत ब्रह्म ही है** - *'यतोवा इमानि जायन्ते ... अभिशं विशन्ति तद् ब्रह्म'* - जिसमें ये जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें लय हो जाता है वह ब्रह्म है, *'तत्त्वमसि'* - हे जीव! वही तू है, सहस्त्रों श्रुतियाँ इसका प्रमाण हैं। **अखण्ड रूप से इस प्रकार की स्थिति (बुद्धि/प्रज्ञा) ही मोक्ष है कि निश्चय ही ये सब ब्रह्म ही है - एक रूप भी और अनेक रूप भी (बीज रूप से भी और वृक्ष रूप से भी) यानि विश्व-विराट में भगवान के दर्शन करना ही ज्ञान है।** अर्जुन! मुझ अनंत अखण्ड सुख-सिन्धु में मायारूपी पवन के निमित्त से अनंत कोटि ब्रह्माण्ड अग्नि जल पृथ्वी सूर्य चन्द्र रूपी छोटी-बड़ी लहरें उत्पन्न होती हैं, मुझमें चलती-फिरती हैं और फिर मुझमें ही विलीन हो जाती हैं जिनकी कोई गिनती नहीं। जल तो एक है पर इसकी लहरों को कौन गिन सकता है? लहरें जल से पृथक नहीं हैं वे जल ही हैं, आँखों से अनेक दिखाई पड़ती हैं पर पकड़ने पर जल ही हाथ में आता है। सब लहरें फेन बुलबुले झूठे हैं, सबमें जल ही सत्य वस्तु है - 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवौ ब्रह्मैव नापरा', इस प्रकार से विश्व-विराट नामरूप लहरें हैं और भगवान सुख-सिन्धु जलरूप हैं अर्थात् नामरूप लहरें ही संसार है व ये सब ब्रह्म ही है। ज्ञानी लोग स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सूर्य-चन्द्रादि में **'अस्ति-भाति-प्रिय'** रूप से सच्चिदानंद के दर्शन करते हैं। ये शरीर असत्-जड़-दुःख रूप है और ज्ञानी असत् संसार में सच्चि० ब्रह्म का दर्शन करते हैं, **असत् लहरों में सत् जल का दर्शन करना ही ज्ञान है।** ये संसार भी ब्रह्म में मिलकर सत्रूप ही हो जाता है जैसे लहरें जल में मिलकर जलरूप हो जाती हैं अतः **हमारा स्वरूप ब्रह्म है चाहे कार्य-रूप में देखो और चाहे कारण-रूप में देखो, कार्य अपने कारण से जुदा नहीं हुआ करते - अन्त में 'कारण-रूप' ही हो जाते हैं।।**	
38	38 - Jul -13	32		**पाँच माताओं का वर्णन**	1
39	39 - Jul -13	47	कर्म	अर्जुन! **कर्म** को जानना चाहिये, **विकर्म** को जानना चाहिये और **अकर्म** को जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति अति गूढ़ है, कठिन है। **कर्म** :: वेद विहित कर्मों को ही कर्म व कर्मों को ही धर्म कहते हैं। भगवान की वाणी वेद है, वेद में जिन कर्मों का विधान है वही कर्म है और निषिद्ध कर्म **विकर्म** हैं। श्रुति यानि वेद मेरी आज्ञा है, जो मेरी आज्ञा भंग करता है वह मेरा द्वेषी है, वह न भक्त है न मुझे प्रिय है। वेद में ४वों वर्णाश्रम के धर्मों का मैंने इस प्रकार विधान किया है। चारों वर्णों के विशेष धर्म :: ब्राह्मण - शम (इन्द्रिय निग्रह), दम (मन निग्रह), तप, शौचं (तन मन बुद्धि की शुद्धि), क्षान्ति (क्षमा भाव), आर्जवं (सरल स्वभाव), ज्ञान-विज्ञान (वेद शास्त्रों का सम्यक ज्ञान होना ज्ञान तथा ब्रह्म में स्थिर होना व निष्ठा रखना विज्ञान है), आस्तिक्यं (वेद और	

			विकर्म और अकर्म भाग – १	गुरु में पूरा विश्वास रखना) क्षत्रिय - शौर्य, तेज, धृति (धैर्य), दाक्ष्यं (युद्ध नीति में दक्षता), अपलायनम्, दानं व ईश्वर भाव वैश्य - कृषि, गौरक्षा और वाणिज्य। अन्न अधिक उपजाना चाहिये व अन्न का अनादर निषेध है क्योंकि प्राणों की रक्षा अन्न से ही होती है। अन्न के समान कोई धन नहीं है। भगवान कहते हैं कि सभी भूत-प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही जीते हैं इसलिये संसार में अन्न ही श्रेष्ठ है। जीवन निर्वाह के लिये 'रोटी, कपड़ा और मकान' की आवश्यकता होती है इनमें अन्न सर्वश्रेष्ठ है शूद्र - परिचर्या, अपने तीनों बड़े भाइयों की सेवा करना । इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों भाई हैं और भगवान पिता हैं अतः सब प्रेम से रहो और अपना-२ काम करो तो जीवन अच्छा चलेगा :: चारों आश्रम के विशेष धर्म :: ब्रह्मचारी - २५ वर्ष तक विद्याध्ययन करें, ग्रहस्थ - पति = पत्नि की सब प्रकार से रक्षा करे, पत्नि = तन मन वाणी से पति की सेवा करें, पिता = पुत्रों को पढ़ाना-लिखाना और विद्वान बनाना, पुत्र = माता-पिता की सेवा, गुरु = विद्यादान, शिष्य = गुरुसेवा, राजा = पुत्रवत् प्रजा-पालन, प्रजा = राजाज्ञा पालन, वानप्रस्थ एवं सन्यास :: सामान्य धर्म :: १ अहिंसा २ सत्यं ३ अस्तेय ४ ब्रह्मचर्य ५ अपरिग्रह ६ अक्रोध ७ गुरुशुश्रुषा ८ शौचं ९ सन्तोषं १० आर्जवम् ११ अमानित्वं १२ अदम्भित्वं १३ आस्तिकत्वं	
40 - Jul -13	32	⊕	गुरु परम्परा	वेद को बताने वाले साक्षात् भगवान नारायण ही हैं। सृष्टि के आदि में भगवान ने सर्वप्रथम 'प्रथम जीव' ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उन्हें शोक-मोह से ग्रस्त देखकर आदि गुरु भगवान नारायण ने ब्रह्माजी को वेदों का उपदेश दिया जिससे उनका शोक-मोह दूर हुआ । वेद भगवान की वाणी है व स्वर-व्यंजन रूप है, वेद स्वयं तो बोलते नहीं अतः भगवान नारायण को उनको उपदेश करना पड़ा और यहीं से ज्ञान की गुरु-परम्परा आरम्भ हुई :: गुरु परम्परा :: भ०नारायण→ब्रह्मा→के पुत्र वशिष्ठ→के पुत्र शक्ति→के पुत्र पराशर→के पुत्र व्यास→के पुत्र शुकदेव (सन्यासियों/विरक्तों की परम्परा) →के शिष्य गौड़पादाचार्य→के शिष्य गोविन्दाचार्य→ के शिष्य शंकराचार्य→के ४ प्रधान शिष्य १.पद्मपादम २.हस्तामलक ३.तंत्रोटकं ४.वार्तिककारम् → के अनेकों शिष्य। वही परम्परा अब तक चली आ रही है, आज भी संत-महात्मा और आचार्य वही ज्ञान देते हैं ।। **पाँच माताओं का वर्णन** ।।	2
41 - Jul -13	33		कर्म विकर्म और अकर्म भाग – २	अर्जुन! कर्म को जानना चाहिये, विकर्म को जानना चाहिये और अकर्म को जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति अति गूढ़ है, कठिन है वह जल्दी समझ में नहीं आती अतः अर्जुन तुम इन्हें समझो :- वेद विहित कर्मों को ही कर्म और वेद-विरुद्ध कर्मों को ही विकर्म कहते हैं। कर्म ही धर्म है और धर्म ही कर्म है अतः चारों वर्ण, चारों आश्रम तथा पिता-पुत्र गुरु-शिष्य राजा-प्रजा आदि को वेद की आज्ञानुसार ही कर्म करने चाहिये। वेद में वर्णाश्रम-पदाधिकार के लिये विहित-कर्म विशेष कर्म कहलाते हैं तथा इनके अतिरिक्त सभी वर्णाश्रम व पदों के लिये सामान्य कर्म भी बताये हैं। कृष्णयजुर्वेद-शारीरिकोपनिषद के अनुसार :: सामान्य धर्म :: १ अहिंसा शारीरिक, मानसिक अथवा वाचिक हिंसा न तो करनी चाहिये, न करवानी चाहिये और न इसकी सलाह ही देनी चाहिये २ सत्यं सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और झूठ के समान कोई पाप नहीं है ३ अस्तेय चोरी न करना ४ ब्रह्मचर्य ५ अपरिग्रह अन्न, धन, कपड़ा अथवा मकान का संग्रह वेद में वर्जित है ६ अक्रोध हिंसा की दृष्टि से क्रोध करने का निषेध है किन्तु पुत्र या शिष्य के सुधार के लिये क्रोध वर्जित नहीं है ७ गुरु शुश्रुषा ८ शौचं स्नान से शरीर की, सत्य एवं साधन-चतुष्टय व षट्क-सम्पदा आदि दैवीय सम्पत्ति से मन की, विद्या और तप से आत्मा की तथा आत्मा के ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि हो जाती है ९ संतोषं नैतिक नीति न्याय की कमाई में संतोष रखना चाहिये क्योंकि भाग्य रूपी पात्र के अनुसार मरु भूमि में भी अवश्य ही मिलता है १० आर्जवम् सरल स्वभाव - अभिमान एवं अहंकार नहीं करना चाहिये ११ अमानित्वं सम्मान की इच्छा न करो तथा दूसरों को सम्मान दो १२ अदम्भित्वं दिखावा अथवा ठगी नहीं करनी चाहिये १३ आस्तिकत्वं ईश्वर एवं ईश्वर की वाणी वेद पर पूरा विश्वास करना चाहिये, ऐसा न करना विकर्म है १४ अहिंस्त्रता - क्रूरता न होना।।	
42 - Jul -13	28	⊕		**पाँच माताओं का वर्णन**	3
43 - Jul -13	43		कर्म विकर्म और अकर्म भाग – ३	भगवान कृष्ण ईश्वर के अवतार, गुरुओं के भी गुरु व संसार के माता-पिता हैं। भगवान कृष्ण जगत की उत्पत्ति-पालन करते हैं तथा जगत के शासक भी हैं। अर्जुन! कर्म, विकर्म और अकर्म को जानना चाहिये। वेद-विहित कर्मों को ही कर्म अथवा धर्म कहते हैं तथा वेद-विरुद्ध कर्मों को विकर्म कहते हैं। ईश्वर ने किसी को भी दुःख देने का निषेध व सबको सुख देने का विधान किया है। सबके सुख-दुःख का मापदण्ड तुम स्वयं हो यानि अपने सुख-दुःख से संसार के सुख-दुःख की पहचान करो सामान्य धर्म - १.अहिंसा २.सत्यं ३.अस्तेय ४.ब्रह्मचर्य ५.अपरिग्रह ६.अक्रोध ७.गुरु सुश्रुषा ८.शौचं ९.संतोषं १०.आर्जवम् ११.अमानित्वं १२. अदम्भित्वं १३.आस्तिकत्वं १४.अहिंस्त्रता। अकर्म - आत्मा अकर्म है, आत्मा में कर्म नहीं हैं माया राज्य यानि दे०इ०म०बु०प्रा० में कर्म हैं। भगवान की माया व उसके ३ गुणों से ये उत्पन्न भये हैं तथा इनके भीतर बैठकर देखने वाला मेरा ही अंश है उसमें कर्म नहीं हैं अतः अर्जुन! अपने आप को अकर्म जानो। भगवान कहते हैं - खाते-पीते, चलते-फिरते, देखते-सुनते हुए आदि जितने भी कर्म हैं सब दे०इ०म०बु०प्रा० में ही हो रहे हैं। ज्ञानी ऐसा जानता है कि मैं कुछ नहीं करता हूँ - पैरों में चलना, आँखों में देखना, कानों में सुनना आदि ये सब कर्म इन्द्रियों में हो रहे हैं, मैं कुछ नही कर रहा हूँ मैं तो द्रष्टा मात्र हूँ कर्म के पाँच हेतु - अर्जुन! ये शरीर कर्मों का अधिष्ठान है जहाँ बैठकर कर्म किया जाता है, अन्तःकरण में भगवान का प्रतिबिम्ब (साभास बुद्धि) ही कर्ता होता है, कर्म करने के साधन/करण (इन्द्रियों) में ही कर्म होते हैं, शरीर में चेष्टा (क्रिया) प्राणों से होती है, सभी इन्द्रियों के अनुग्राहक देवता होते हैं (चक्षु के सूर्य, श्रोत्र के दिगु, त्वचा के वायु, रसना के वरुण व नासिका के अश्वनि)-इन पाँचों से सब कर्म होते हैं। शरीर-मन-वाणी से न्याय-अन्याय पूर्वक जो भी कर्म किये जाते हैं उनके ये ५ हेतु हैं। आत्मा इन सबके भीतर बैठा है - द्रष्टा साक्षी मात्र, ऐसा होने पर भी जो अपनी आत्मा में कर्मों का आरोप करता है वह दुर्मति है, वह अज्ञानी 'आत्मा तथा कर्म के स्थान' दोनों को ही नहीं जानता अतः आत्मा को भगवान ने अकर्म बताया है यानि सभी कर्म दे०इ०म०बु०प्रा० में होते हैं तथा आत्मा अधिष्ठान व अकर्म है - जो ऐसा जानता है वह ज्ञानी है। आत्मा पृथ्वी के समान अचल और सनातन है। अर्जुन! जीव मेरा अंश है, सदा से ही है, उसका जन्म नहीं हुआ है असलिये उसकी मृत्यु नहीं होती, मृत्यु का कारण जन्म होता है। अर्जुन! मेरा अंश 'जीव' ज्ञान स्वरूप, निर्मल, अविनाशी व स्वभाव से ही सुखराशि है। आत्मा में कर्म, दुःख, जन्म-मरण व अज्ञानता नहीं है। सब शरीरों में आत्मा रूप से मैं ही बैठा हूँ।आत्मा स्त्री-पुरुष नहीं है पर सब स्त्री-पुरुष में है। ये नाम-रूप मेरी माया से बनते हैं व सबके भीतर चेतन आत्मा एक ही है। अर्जुन! मेरी महामाया शक्ति योनि है, पत्नि है तथा चेतन-रूपी जीव का स्थापन करने वाला मैं पिता हूँ मैं उसमें चेतनता माने आभास या प्रतिबिम्ब डालता हूँ, माया में हलचल होती है और माया ही जगत के रूप में परिणित हो जाती है। जितने भी मनुष्य पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि मूर्तियाँ हैं मेरी महामाया शक्ति प्रकृति इन सबकी माता है और चेतन-रूपी बीज का स्थापन करने वाला मैं पिता हूँ इसलिये सारा संसार मेरी संतान है। ये नियम है कि जो माता-पिता होते हैं वही संतान होती है असलिये भगवान कहते हैं कि ये संसार मुझसे जुदा नहीं है अतः इन सबमें मेरा दर्शन करो, ये विश्व-विराट मेरा ही स्वरूप है। माटी से बने घट-मठ-खिलौनों में एक माटी का ही दर्शन करो क्योंकि ये घट-मठ-खिलौने माटी से भिन्न नहीं हैं, माटी सबमें समायी है। घट-मठ नाम-रूप झूठे हैं, माटी सत्य है। जल की लहरों में जल के दर्शन करो, जल एक है लहरें अनेक है, जल सत्य है लहरें झूठी हैं ।।	
44 - Jul -13	28	⊕		**पाँच माताओं का वर्णन**	4
45 - Jul -13	42		* गीता महात्म्य *	भगवान श्रीकृष्ण सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर के अवतार हैं इसीलिये गीता महात्म्य में लिखा है कि देवकी नन्दन श्रीकृष्ण जगत गुरु हैं और उन्होंने ही ये गीता सुनाई है अर्जुन को। वेदों में उपनिषदें ज्ञान-काण्ड हैं व उपनिषदों का सार दोहन करके भगवान ने श्रीमद्भगवत्गीता कहा है। सम्पूर्ण उपनिषदों को भगवान ने गउऐं बनाया और गोपाल नंदन श्रीकृष्ण स्वयं उन गउओं को दुहने वाले बने यानि उपनिषदों का सार निकालने वाले, पार्थ को वत्स यानि बछड़ा बनाया, शुद्ध बुद्धि वाले इस दूध को पीने वाले बने क्योंकि बछड़ा ही सब दूध नहीं पी लेता है, घरवाले और अन्य लागों को भी दूध दिया जाता है उचित मूल्य देकर। इस गीता-ज्ञान रूपी दूध का उचित मूल्य है - शम-दम आदि षट्क सम्पदा और दैवीय सम्पत्ति, अर्थात् भगवान की भक्ति से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है वही इस दूध के भोक्ता बने। ये गीता रूपी दूध महान अमृत है जिसको पीने वाला यानि जो इसे शुद्ध बुद्धि से धारण करता है वो जन्म-मृत्यु से सदा के लिये छूट जाता है। इसे 'अमृतं महत्' यानि बड़ा अमृत बताया है क्योंकि शास्त्र में अन्य अमृतों का भी वर्णन है :- १.अब्धौ या समुद्र में अमृत है - किन्तु समुद्र का जल तो खारा है २.चन्द्रमा में अमृत है - फिर चन्द्रमा घटता बढ़ता क्यों है? ३.चन्द्रमुखी कान्ता के मुखों में अमृत है - तो उनके पति मरते क्यों हैं? ४.नागलोक में अमृत है - तो सर्प तथा	

		* क्षर–अक्षर पुरुष *			सर्पों के डसने से लोग मरते क्यों हैं? ५.देवलोक में अमृत है – तो पुण्य क्षीर्ण होने पर देवता स्वर्ग से क्यों गिरा दिये जाते हैं इसलिये ये सब झूठे अमृत हैं, इन सबमें में दोष बताया तो भगवान का भक्त कहता है कि जो भगवान के भक्त हैं, साधु–महात्मा व संतलोग हैं वो अमृत–रूप भगवान की कथा गीता–भागवत् सुनाते हैं जिसे सुनने से भगवान का ज्ञान होता है व जीव अमर हो जाता है इसलिय ये गीता–ज्ञान रूपी दूध सबसे बड़ा अमृत है जिसके पान से भगवान का ज्ञान होता है, भगवान के सम्बन्ध में अज्ञान का नाश होता है तथा आत्मा–परमात्मा का एकत्व ज्ञान होता है और जीव जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है अतः गीता–ज्ञान सच्चा अमृत है। अनेक जन्मों के कठोर तप और भक्ति के पुण्य अर्जन से अर्जुन को भगवान का ऐसा दर्शन हुआ कि भगवान सदा अर्जुन के साथ रहते हैं व सखा भाव से रहते हैं। श्रीकृष्ण नारायण के अवतार ईश्वर हैं और अर्जुन नर (जीव) है, ऐसा भाग्य तो किसी ऋषि मुनि का भी देखने में नहीं आता कि ईश्वर सदा साथ रहे। अर्जुन अपने सभी जीव रूपी भाइयों के कल्याण के लिये भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना करता है – *'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः ... शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'* – भ०गी०२.७, हे भगवन! आप मुझे वह तत्त्व बताओ जिससे मैं जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ – *'सो जानहिं जेहि देव जनाहि, जानत तुमहिं तुमहि हो जाई'* यानि प्रभु! जिसको आप जना दें वही आपके बताने से आपको जान सकता है व आपको जानने से वह आपका ही स्वरूप हो जाता है, उसका जीवभाव समाप्त हो जाता है और वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है, तब श्रीभगवानुवाच :- **गी०अ० १५/१६-१८** :: अर्जुन इस मृत्युलोक में **'क्षर'** और **'अक्षर'** दो प्रकार के पुरुष हैं। क्षण–क्षण में उत्पन्न हो–होकर मरने वाले भूतप्राणी क्षर कहलाते हैं। जो उत्पन्न होते हैं उन्हें भूत कहते हैं, इनके पहले आकाश–वायु–अग्नि–जल–पृथ्वी पंचभूत हैं इन पंचमहाभूतों से सभी प्राणी उत्पन्न होते है अतः सभी प्राणी भूत हैं जिनका जन्म से ही क्षीर्ण होना आरम्भ हो जाता है। ये संसार भगवान की महामाया शक्ति **'प्रकृति'** से उत्पन्न होता है इस क्षर की अपेक्षाकृत् स्थायी प्रकृति को 'अक्षर' कहते हैं तथा इन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण–पोषण करता है वह जड़वर्ग से सर्वथा अतीत व जीवात्मा से भी उत्तम अविनाशी परमात्मा **पुरुषोत्तम** नाम से विख्यात है ।।	
46 - Jul -13	32	⊕			**पाँच माताओं का वर्णन**	5
47 - Jul -13	33	* क्षर–अक्षर और पुरुषोत्तम पुरुष *			**गीता अ०१५ – १६** भगवान श्रीकृष्ण सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर होने से जगद्गुरु हैं। सभी उपनिषद का सार ये गीता है। शुद्ध बुद्धि वाले ही गीता–ज्ञान रूपी दूध का पान करते हैं व जन्म–मरण का बन्धन सदा के लिये छूट जाता है। अर्जुन! इस लोक में **क्षर** और **अक्षर** २ पुरुष हैं, सभी भूत–प्राणी क्षर हैं, क्षण–क्षण में जिनका विनाश हो रहा है। शरीरों के समुदाय को ही संसार कहते हैं। मृत्यु का ये शरीर भोजन है प्रति क्षण ये शरीर नाश होता रहता है। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड माया से बनते हैं, माया/प्रकृति इन शरीरों का कारण है अतः प्रकृति (कारण) इन शरीरों (कार्य) की अपेक्षा से अक्षर है **१७** अर्जुन! इन दोनों क्षर–अक्षर से उत्तम एवं ऊपर परमात्मा पुरुष है जो कार्यरूप क्षर तथा कारणरूप अक्षर से परे है, उसी को ईश्वर कहते हैं, वह तीनों लोकों में प्रविष्ट है **१८** अर्जुन! क्योंकि मैं क्षर (शरीर) और अक्षर (प्रकृति) से भी परे हूँ इसलिये मेरी लोक और वेद में **पुरुषोत्तम** नाम से प्रसिद्धि है, उसी को ब्रह्म, सच्चिदानंद या परमात्मा कहते हैं **१९** जो भी जीव मुझे क्षर–अक्षर से परे पुरुषोत्तम जानता है उसे अब कुछ भी जानना शेष नहीं रहा। जिस परमात्मा को जानना था वह उसने जान लिया, जो पाना था उसने पा लिया, जो करना था वह कर लिया क्योंकि परमात्मा को जानने के लिये ही कर्म, भक्ति और ज्ञान किया जाता है **२०** हे अर्जुन! मैंने ये गुप्त से गुप्त, गूढ़ से गूढ़ शास्त्र तुम्हें सुनाया इस १५वें अध्याय को सम्यक प्रकार से जानकर जीव ज्ञानवान और कृत–कृत्य हो हो जाता है यानि उसे अब कुछ करना–पाना–जानना शेष नहीं रहता क्योंकि जिसके पाने के लिये जो कुछ करना था वह सब साधन कर लिये, भगवत् दर्शन के लिये भक्ति करनी थी सो भक्ति भी पूरी हो गयी और ज्ञान प्राप्त करना था भगवान को देखने के लिये सो भगवान को जान लिया कि – सच्चिदानंद भगवान का स्वरूप है, वही सब शरीरों के भीतर बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है दूसरा कोई नहीं है। द्रष्टा और दृश्य दो ही पदार्थ हैं, देखने वाला भगवान है और दिखाई पड़ने वाली सब माया है। ये देह देवालय है तथा परमात्मा देव स्वयं ही सब देहों में बैठकर देख रहे हैं अतः द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया है। एक ही देव सब शरीरों में बैठकर देख रहा है। स्त्री–पुरुष पशु–पक्षी आदि सभी मन्दिर हैं इनको तो ज्ञान है नहीं, जीवात्मा के रूप में सबके भीतर बैठकर मैं ही देख रहा हूँ अतः अपने को देव जानो क्योंकि देखने वाला **'अहं तत्त्व'** साक्षात् भगवान ही हैं, मैं नामक तत्त्व ब्रह्म है ये सभी शरीरों में एक ही है, इस तत्त्व का कभी विनाश नहीं होता –*'न जायते म्रियते वा कदाचित ... न हन्यते हन्यमाने शरीरे'* –भ०गी०२.२०, इसका न जन्म होता है न मरण होता है क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म होता है। आत्मा नित्य, सनातन व पुरातन है जो न किसी को मारता है और न कोई उसे मार सकता है ।।	
48 - Jul -13		⊕			Recording error.	
49 - Jul -13		⊕	⊕		Recording error.	
50 - Jul -13		⊕	⊕	⊕	Recording error.	
51 - Jul -13		⊕	⊕	⊕	Recording error.	
52 - Jul -13		⊕	⊕		Recording error.	
53 - Jul -13		⊕			Recording error.	

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न □ भूतसङ्घः ॥१॥

Meaning:
1.1: In the Early Morning I remember (i.e. meditate on) the Pure Essence of the Atman shining within my Heart, ...
1.2: ... Which gives the Bliss of Sacchidananda (Existence-Consciousness-Bliss essence), which is the Supreme Hamsa (symbolically a Pure White Swan floating in Chidakasha) and takes the mind to the state of Turiya (the fourth state, Superconsciousness),
1.3: Which knows (as a witness beyond) the three states of Dream, Waking and Deep Sleep, always,
1.4: That Brahman which is without any division shines as the I; and not this body which is a collection of Pancha Bhuta (Five Elements).

प्रातर्भजामि मनसा व□सामगम्यं
वा□ो विभान्ति निखिला यदनुग्रह□ा ।
यन्न□िन□िव□नैर्निगमा अवो□ं_
स्तं द□द□मजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥२॥

Meaning:
2.1: In the Early Morning I worship That, Which is beyond the Mind and the Speech,
2.2: (And) By Whose Grace all Speech shine,
2.3: Who is expressed in the scriptures by statement "Neti Neti", since He cannot be adequately expressed by Words,
2.4: Who is called the God of the Gods, Unborn, Infallible (i.e. Imperishable) and Foremost (i.e. Primordial).

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशे□मशे□मूर्तौ
रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै ॥३॥

Meaning:
3.1: In the Early Morning I Salute That Darkness (signifying without any Form) which is of the nature of Supreme Illumination,
3.2: Which is Purna (Full), Which is the Primordial Abode, and Which is called Purushottama (the Supreme Purusha),
3.3: In Whom this endless World is settled endlessly (i.e. from the beginning of creation), ...
3.4: ... and (this endless World) appear like a Snake over the Rope (of the Primordial Essence).

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकालपठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥४॥

Meaning:
4.1: These three Slokas, which are Holy (unites one with the Whole), and the ornaments of the Three Worlds,
4.2: He who recites in the early Morning, goes to (i.e. attain) the Supreme Abode (of Brahman).